Chapter-4

अध्याय - ४

हिन्दी पत्र-साहित्य में समसामयिक सन्दर्भ

हिन्दी पत्र-साहित्य में समसामयिक सन्दर्भ

पत्र-साहित्य और समकालीन इतिहास :

जीवन के विविध क्षेत्रों में अपने त्याग और बलिदान से सफलता प्राप्त करने वाले मनीषियों के पत्र न केवल उनके व्यक्तित्व के निर्मल दर्पण ही होते हैं, वरन् समकालीन इतिहास के मूल्यवान् दस्तावेज़ भी होते हैं । विश्वविख्यात पत्र-लेखक नेपोलियन बोनापार्ट के पत्रों के सम्पादक श्री थोम्पसन महोदय ने बहुत उपयुक्त लिखा है -

"पत्र, कुल मिलाकर सर्वाधिक सच्चे, साथ ही दिलचस्प दस्तावेज़ हैं । जीवन के दर्शन और इतिहास के विद्यार्थी दोनों के लिए ये साधारण स्वीकृतियां, जो कि प्रसिद्ध व्यक्ति आग की तरह ज्वलन्त विश्वास के साथ व्यक्त करते हैं, अपरिमित मूल्य रखती हैं ।"[1]

उत्तर मध्यकाल से लेकर अबतक का जो प्रमाणभूत पत्र-साहित्य प्रकाश में आया है, उसमें समकालीन इतिहास के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ-सूत्र प्राप्त होते हैं । इन सन्दर्भों से मुख्यत: तीन कार्य सिद्ध होते हैं :-(१) तत्कालीन इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं की पुष्टि होती है, (२) नये तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है और (३) प्रसिद्ध व्यक्तियों तथा घटनाओं के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रांतियों का निराकरण होता है । इस प्रकार समकालीन इतिहास के अध्ययन और लेखन में पत्र-साहित्य से अपूर्व सहायता मिलती है ।

---

1 " Letters are, upon the whole, the most truthful as well as the most interestion of historical documents. Both to the spectator of life and to the student of history there is infinite value in the unconsidered confessions, the fireside confidences of publicmen."

-"Napoleon's Letters "(1965),
Translated and Edited by
J.M. Thompson, Introduction, P. 5 .

हिन्दी पत्र-साहित्य में प्राप्त समसामयिक सन्दर्भों का विभाजन :

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पत्रों में लेखक किसी विशिष्ट समय की स्वयं के सम्बन्ध में अथवा अन्य किन्हीं व्यक्तियों और घटनाओं के सम्बन्ध में प्रतिक्रियाएं व्यक्त करता है । ये प्रतिक्रियाएं लेखक द्वारा ऐसे क्षणों में व्यक्त की जाती हैं जब कि वह अपने स्वभाव और अकृत्रिम रूप में होता है । अत: समसामयिक परिस्थितियों के जो यथार्थ सन्दर्भ हमें पत्र-साहित्य में प्राप्त होते हैं वे साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं मिलते । उत्तर मध्यकाल से लेकर अब तक का जो प्रचुर पत्र-साहित्य प्रकाशित हुआ है उसमें प्राप्त समसामायिक सन्दर्भों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित विभागों में बांटा जा सकता है :-

(१) राजनैतिक सन्दर्भ ,
(२) सामाजिक सन्दर्भ ,
(३) धार्मिक सन्दर्भ और
(४) साहित्यिक सन्दर्भ ।

अब हम यहां प्रत्येक विभाग के सन्दर्भों की विस्तार से चर्चा करेंगे ।

१ - राजनैतिक सन्दर्भ :

जिस समय से मानव-समाज सभ्य बनकर किसी-न-किसी शासन को स्वीकार करने लगा, उस समय से उसके समग्र जीवन पर राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ने लगा । भारत के राजनैतिक इतिहास में नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम की गतिविधियों का बहुत बड़ा महत्व है । अतएव उन्हीं को केन्द्र में रखकर हिन्दी पत्र-साहित्य में प्राप्त राजनैतिक सन्दर्भों को अधोलिखित तीन वर्गों में उपविभाजित किया जा सकता है :-

(क) पूर्व-नवजागरणकालीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ ,
(ख) नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम काल की राजनैतिक-गतिविधियों के संदर्भ और
(ग) वर्तमान युगीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ ।

सबसे पहले हम पूर्व-नवजागरण कालीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भों की चर्चा करेंगे ।

(क) पूर्व-नवजागरणकालीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ :

पूर्व-नवजारणकालीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ हमें डा० जदुनाथ सरकार तथा डा० रघुवीरसिंह द्वारा सम्पादित शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में आग्रा की यात्रा-सम्बन्धी पत्र-संग्रह (Shivaji's visit to Aurangzib at Agra), डा० नारायणसिंह भाटी द्वारा सम्पादित "परम्परा" भाग-२४, डा० महेन्द्रप्रतापसिंह द्वारा सम्पादित "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल", डा० काशिनाथ शंकर केलकर द्वारा लिखित "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र", डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा सम्पादित प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह" आदि में प्राप्त होते हैं ।

आगरे में छत्रपति शिवाजी की बादशाह औरंगजेब के साथ मुलाकात और वहां शाही कैद से शिवाजी के निकल भागने का सबसे अधिक सच्चा और पूरा-पूरा वृत्तांत सन् १९३९ ई० में जयपुर राज्य के पुराने दफ्तरों से निकला है । उन दिनों आम्बेर जयपुर का पाटनगर था । आम्बेर के मिर्जा राजा जयसिंह का पुत्र कुमार रामसिंह उस समय मुगल दरबार में उपस्थित था और आगरे में शिवाजी की मेहमानदारी तथा रक्षा का प्रबन्ध करने के लिए औरंगजेब ने उसे ही नियुक्त किया था । हर रोज़ बादशाही दरबार में जो जो घटनाएं और बातचीत होती थीं, शामको अपने डेरे पर लौटकर रामसिंह वह सब अपने कर्मचारियों को सुना देता था, जो उन सारी बातों को लिखकर आम्बेर के दीवान कल्याणदास को भिजवा देते थे । उस समय के लिखे हुए सब पत्र अभी तक जयपुर राज्य के महाकिजखाने में मौजूद हैं । ऐसी समकालीन और विश्वसनीय ऐतिहासिक सामग्री फारसी अथवा अन्य किसी भाषाओं में लिखित ग्रंथों में नहीं मिलती । इन पत्रों से बहुत-सी प्रचलित गप्पे और दन्तकथाएं बिलकुल झूठ साबित हो गयी हैं ।

यह तो सर्वविदित है कि औरंगजेब ने शाहजहां को आगरे के किले में बन्द कर दिया था । जब तक शाहजहां आगरे के किले में कैद रहे,

तब तक औरंगजेब दिल्ली में ही रहा । शाहजहां की मृत्यु के बाद ही उसने आगरे में प्रवेश किया । औरंगजेब के आगरे में प्रवेश का उल्लेख आम्बेर के वकील पारकलदास द्वारा दीवान कल्याणदास के नाम २३ फरवरी १६६६ को लिखित पत्र में मिलता है । इस पत्र का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है :-

" सिद्ध श्री सर्वोपमा बिराजमान दीवान जी श्री कल्याणदास जी जोग लिखतं आग्याकारी परकालदास केन सेवा अवधारिज्यो जी । बैठा समाचार श्री दीवान जी की महरबानी थे भला छै जी । श्री दीवान जी का घड़ी-घुडी का सदा भला चाहिज्ये जी । अप्रंचि ता० २० मा० सावान सन् १०७६ (१५ फरवरी १६६६) पातशाह जी आगरे आणि पहोचा छै जी । दाराशाह की हवेली में रहे छै जी ।।"[1]

चांद-तिथि के अनुसार बादशाह औरंगजेब का ४९ वां जन्मदिन १२ मई १६६६ ई० को पड़ता था । बादशाह ने उसी दिन शिवाजी के राज-दर्शन के लिए हुक्म दिया था । सामान्य शिष्टाचार ऐसा था कि जब कोई बड़ा व्यक्ति राज-दर्शन के लिए आता था तो उसके दरजे के मुताबिक एक या दो बड़े उमरा राजधानी से एक दिन की मंजिल आगे बढ़कर उससे मिलते थे, उसको साथ ले आते और फिर दरबार में राज-दर्शन के लिए ले जाते थे । इस आगे बढ़कर स्वागत करने की तत्कालीन राजनैतिक प्रणालिका को "इस्तिकबाल" अथवा "पेशवाई" कहते हैं । इस प्रणालिका का वर्णन दीवान कल्याणदास को परकालदास ने इन शब्दों में लिख भेजा है :-

"- - - और सेवा के तांई श्री महाराज कवंर जी खत लिख चलायो छै, जू ता० १७ मा० जीकाद सन् १०७६ ने इहां आइ पहोंचियों, आणि मुलाजमत करियो । सो सेवो जी ता० १७ जीकाद आवेलो जो । और जो समाचार होइला सू पाछ थे अरजू लिखां ला । और पातशाह जी हुक्म कियो छो जू सेवाजी को पेशवा श्री महाराज कवांर जी व फिदाई खां ऐक मंजिल जाइ ले अवो । सू ये पेशवा जाइ ले आवोला जी । ता० १७ ने मुलाजमात करेला जी ।"

---

1 " Shivaji's Visit to Aurangzeb at Agra " (1963), P. 13.

2 Ibid, P. 18-19 .

इस प्रकार इस पत्र में तत्कालीन राजनैतिक परम्परा का सन्दर्भ प्राप्त होता है । शिवाजी बादशाह से मिलने अकेले नहीं गये थे, उनके साथ उनका पुत्र शम्भाजी भी था । औरंगजेब ने इन दोनों की अच्छी महेमानदारी की और फिर अपनी कूटनैतिक चाल से दोनों को शाही कैद में बन्द कर दिया । परन्तु दोनों ही युक्ति करके शाही कैद से भाग निकले । इन दोनों के शाही कैद से भाग निकलने की सूचना श्री बालुशाह ने दीवान कल्याणदास के नाम १८ अगस्त १६६६ को लिखे पत्र में इस प्रकार दी है । :-

" सिद्ध श्री सरवोपमा ओग्य संग ही श्री कल्याणदास जी ओग्य लिखतं वलु केनि जुहार बंच्या । अठा का समाचार भला छै । थां का सदा भला चाहीजे अप्रंच भादवा सुदी १४ सनीसरवार सवार ही सेवोजी अठास्यों भगो । थे कागद पहुंचत पर वानी गैला घाटा सगले ताकीदी कीज्यो जावा न पावे । कोई जोगी सीनासी को भेश करी निकसे तीख्यो चौकसा ही कीज्यो । - - - सेवाजी को बेटो भी भागो छै ; दोन्यु भाग्या छै ।--"[१]

इस प्रकार ये पत्र मध्ययुगीन राजनैतिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं के प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करते हैं ।

डा० महेन्द्रप्रताप सिंह द्वारा सम्पादित "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल" शीर्षक पुस्तक में संकलित महाराजा छत्रसाल से सम्बन्धित ऐतिहासिक पत्रों और दस्तावेजों से पता चलता है कि महाराजा छत्रसाल ने सम्राट औरंगजेब के जीवनकाल में उनके साम्राज्य को तोड़कर बुन्देलखण्ड में एक स्वतंत्र सत्ता की स्थापना कर ली थी । अपने पुत्र जगतराज को प्रेषित एक पत्र में महाराजा छत्रसाल ने लिखा है कि उन्होंने स्वामी प्राणनाथ और ईश्वर की कृपा से लड़ाई में विजय प्राप्त की थी । उन्हीं के शब्दों में -

"- - - हमारे पराक्रम को खयाल करौ तो हमें बरदान प्राननाथ जू कौ हो गयौ हतौ और ईसुर की मरजी सौ वन की मरजी से फते करी ऐसे पराक्रमी तुमकौ नहीं होने, हमारी राय जा है कि सब विदिया थोड़ी-थोड़ी सीखो चाहिए । - - -"[२]

---

१ " ShivaJi's Visit to Aurangzeb at Agra " (1963). P. 53.

२ "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल" (१९७५), पृ० ११४ ।

इससे स्पष्ट है कि छत्रसाल से सम्बन्धित ऐतिहासिक प्रमाणावली से अनेक नये तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है ।

डा० नारायणसिंह भाटी के सम्पादकत्व में प्रकाशित "परम्परा" के भाग-२४ में अनेक ऐतिहासिक पत्र और दस्तावेज संकलित हैं । इसमें वीर दुर्गादास राठौर का एक पत्र प्रकाशित है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इस पत्र में सम्वत् का उल्लेख नहीं है, किन्तु तिथि अषाढ़ सुदि १३ रविवार दी गयी है । डा० दशरथ शर्मा के मतानुसार इस पत्र को संवत् - १६४८ में रखा जा सकता है ।[1] यह पत्र दुर्गादास राठौड़ द्वारा बिलाड़े के दीवान रामसिंह के नाम लिखा गया है । यह पत्र उस समय लिखा गया था जब चारों ओर यह अफवाह फैल रही थी कि शाहजादा अकबर ईरान से सहायता प्राप्त कर भारत पर आक्रमण करनेवाला है और उसकी सेना कंधार पहुंच चुकी है । पत्र का उपयोगी अंश यहां उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है :-

" श्री परमेश्वरजी सत्य है ,

स्वस्ति श्री गांव डायलाणा सुथाने चौधरी जी श्री रामसिंह जी ज्योग लश्कर थां राम श्री दुरगादास जी लिखावंत जुहार अवधार जो जी।--- अप्रंच श्री अकबर जो री हजूर था कासीद आगे आया था । आं साथे समाचार आया था सु म्हे राज नु पहला लिखीयो छै नै दीश्वण री खबर आयां यो आई छै मु० काबुल था अमीरखां पातसाह नूं वाका में लिखीयो छै जू अकबरजी रो थांणो खंधार आयो छै नै असवारी हुई छै ।"[2]

इस पत्र के अतिरिक्त "परम्परा भाग-२४ " में जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह की ओर से सवाई जयसिंह को प्रेषित अनेक महत्वपूर्ण पत्र भी संकलित हैं जिनसे औरंगजेब की मृत्यु के बाद की अनेक राजनैतिक उथल-पुथलों के सन्दर्भ मिलते हैं ।[3] इस प्रकार उत्तर मध्यकाल की राजनैतिक गतिविधियों के अध्ययन के लिए ये पत्र बहुत उपयोगी हैं ।

---

१ "कुछ ऐतिहासिक रुक्के और परवाने" (लेख), "परम्परा", १९६७ , परिशिष्ट-२, पृ० ५ ।

२ "परम्परा" भाग-२४, १९६७, पृ० ६ ।

३ -वही-, पृ० २८, २९, और ३३ ।

डा० काशिनाथ शंकर केलकर ने अपने शोध प्रबन्ध "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" में मराठी क्षेत्र से सम्बन्धित २०८ हिन्दी पत्रों का भाषा वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के आठवें अध्याय में मराठा शासकों और सेना-नायकों के पत्रों में प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों की विस्तार से चर्चा की गयी है। उदाहरणार्थ पत्र क्रमांक १५६ से "निजाम-मराठा सम्बन्ध" पर प्रकाश पड़ता है। इसमें पेशवा बालाजी बाजीराव द्वारा हैदराबाद के निजाम आसफजांह के पुत्र गाजीउद्दीन की सहायता करने का उल्लेख है।[1] इसी प्रकार पत्र-क्रमांक ११५ "मराठा-राजपूत सम्बन्ध" की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें किला रणथंबोर को लेकर मराठों और राजपूतों के बीच हुई लड़ाई का वर्णन है।[2] संक्षेप में ये पत्र १८ वीं शती के अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकट करते हैं।

डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय की सम्पादकता में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित "प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह" में हमें ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भिक शासनकाल के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। ये पत्र सन् १७६३ से १८२० के बीच की अवधि के लिखे गये हैं। आधुनिक युग के राजनैतिक प्रदेशों की दृष्टि से प्रस्तुत पत्रों का सम्बन्ध दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार उड़ीसा तथा नेपाल से है। लेखकों की दृष्टि से इन पत्रों का वर्गीकरण करते हुए कहा जा सकता है कि कम्पनी सरकार के शासकों, देशी नरेशों, नवाबों, जमींदारों, चौधरियों और कानूनगो आदि के बीच यह पत्र-व्यवहार हुआ है। दीवानी या फौजदारी के मुकदमे के सिलसिले में इन पत्रों में निम्न स्तर के सरकारी कर्मचारियों, हरकारों, चौकीदारों तथा चपरासियों के बयान भी कहीं-कहीं मिलते हैं। जैसे, कम्पनी के बड़े साहब के नाम एक प्रार्थना-पत्र में कहा गया है -

"श्री श्री बड़ा साहब गरीब प्रवर सलामति सरकार का सैर-सलाह मोंदाम का वेहतर चाहिये जिस्ते हमारा भला होये।"[3]

---

१ "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ० ४२९।

२ -वही-, पृ० ४०७-४०८।

३ "प्राचीन हिन्दी-पत्र संग्रह" (१९५९), पृ० १८।

बिहार की अदालत में उम्मेदराय, शेख बंगू, मोहन, कन्हाई बढ़ई आदि ने जो ब्यान दिये हैं, उनमें कहा गया है कि उन ब्यानों को "हिंदुई और हींदवी" में लिखा जाय । जैसे, शेख बंगू ने अदालत में कहा था- "हमारा इजहार हींदवी मो लीखा जाऐ हींदवी बोलते हैं ।"[१]

इन ब्यानों से स्पष्ट होता है प्रशासन के क्षेत्र में एक ओर मुगलों की राजभाषा फारसी का बोलबाला और दूसरी ओर अंग्रेज शासकों के अंग्रेजी लादने के प्रयत्नों के बावजूद भी भारतीय जनता में भारतीय लोकभाषाओं की जड़ें गहराई से जम गयी थीं । इस प्रकार इन पत्रों में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से भारतीय राजाओं या नवाबों की राजनैतिक सत्ता के विघटन तथा अंग्रेजी राजसत्ता के विस्तार से सम्बन्धित घटनाएं संकलित हैं ।

सारांशत: औरंगजेब के शासनकाल से लेकर ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भिक शासनकाल तक के प्राप्त पत्रों में हमें पूर्व-नवजागरणकालीन राजनैतिक गतिविधियों के अनेक सन्दर्भ देखने को मिलते हैं । इन सन्दर्भ-सूत्रों से तत्कालीन राजनैतिक परम्पराओं, घटनाओं और समस्याओं की प्रामाणिक और रोचक जानकारी मिलती है ।

(ख) नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम-काल की राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ :

भारत के राजनैतिक इतिहास में नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम का सूत्रपात सन् १८५७ के विप्लव से ही हो गया था, किन्तु भारतीय शासकों की राजनैतिक अदूरदर्शिता, पारस्परिक वैमनस्य, विलासिता आदि के कारण वह क्रांति सफल न हुई ।

पं० गौरीशंकर द्विवेदी "शंकर" ने सन् १८५७ के विप्लववादियों के कुछ महत्वपूर्ण पत्र "सन् सत्तावन की ऐतिहासिक पत्रावली" शीर्षक से प्रकाशित किये हैं । इस पत्रावली को पढ़ने से ज्ञात होता है कि महारानी झांसी वीरांगना लक्ष्मीबाई इस विप्लव की संचालिका थीं और नानाराव, तात्या टोपे, राजा मर्दनसिंह, राजा बखतवली और कितने ही राजा-महाराजा, नवाब आदि उनके सहायक थे । अन्तिम मुगल सम्राट तक इसमें सम्मिलित हो गये थे । उन्होंने समूचे देश में राजा-महाराजाओं को फरमान भेजकर इस

---

१ प्राचीन पत्र-संग्रह, पृ० ११ ।

क्रांति में सम्मिलित होने का आग्रह किया था । राजा मर्दनसिंह को तत्कालीन ओरछे की महारानी लड़ाई सरकार ने जो पत्र भेजा था, उसमें अंतिम मुगल सम्राट के फरमान का स्पष्ट उल्लेख है । देखिए -

"महाराजाधिराजू श्री महाराज श्री राजामर्दनसिंह बहादूर जू देव एते श्री रानी महारानी श्री रानी लड़ाई सरकार बाजू देव्य के बांचने - - - - अपने खुशी रहा इस के खबर पायो जादा खुशी हासिल भई जुबानी हकीकत लाला किशोरसिंह ने जाहिरकरी हुई है ई हाल बादशाही फरमान अपुन कों व रजवारिन कों इश्तहार उहों आयों सो बाजिब लै कै पं० श्री चौधरी खेतसिंह पठवाइये - - - "[1] ।

इस पत्र के किनारे पर तिथि-निर्देश इस प्रकार दिया गया है- आसुन वदी ३ सं० १९१४ टीकमगढ़ । पत्र के नीचे लड़ाई सरकार की मुहर लगी है ।

कुछ पाश्चात्य इतिहासकारों ने भ्रमवश या जानबूझ कर अपने इतिहासों में यह लिखा है कि महारानी झांसी केवल झांसी के लिए ही लड़ी थीं, परन्तु इन पत्रों से उस मत का खंडन हो जाता है और सिद्ध होता है कि यह क्रांति समूचे देश को स्वतंत्र बनाने के लिए थी ।

यद्यपि देशी राजाओं की उपर्युक्त कमजोरियों के कारण यह क्रांति सफल न हुई, तथापि राजनैतिक क्षेत्र में उसका प्रभाव अविस्मरणीय है । इस विग्रह के बाद राजनैतिक ढांचा नये सिरे निर्मित हुआ ।

सन् १८५७ के विप्लव ने सभी देशभक्तों को राष्ट्र के लिए बलिदान करने की अपूर्व प्रेरणा दी । अत: इसे नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम का प्रथम चरण माना जाता है ।

भारतीय नवजागरण तथा स्वराज्य-आन्दोलन को क्रियाशील बनाने में स्वामी दयानन्द सरस्वती का योग कम महत्वपूर्ण नहीं है । भारत की गहरी निद्रा के पश्चात् कृष्ण दयानन्द सरस्वती ही पहले पुरुष थे जिन्हें भारत में देशोन्नति और स्वराज्य का यथार्थ ध्यान आया । उनके तीसरे-चौथे पत्र में देशोन्नति का शब्द दिखाई पड़ता है । "स्वराज्य" शब्द भी पहले पहल उन्होंने ही प्रयुक्त किया ।[2]

---

१ "सन् सत्तावन की ऐतिहासिक पत्रावली", "नयासंसार", २६ जनवरी, १९६६, पृ० ११ ।

२ "कृष्ण दयानन्द के पत्र और विज्ञापन", ~~[illegible]~~, पृ० ३६ ।

जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, भारत के आद्य क्रांतिकारक श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य थे । स्वाधीनता-संग्राम के महान् सेनानी लाला लाजपतराय आर्य समाज को अपनी "माता" समझते थे ।[1] उन्होंने सन् १९०६ में "पगड़ी संभाल ओ जट्टा" नामक पहला किसान आन्दोलन संचालित किया था । लाला जी को अंग्रेजों ने जब छल से पकड़कर सन् १९०७ में काले पानी की सज़ा दी तो अनेक आर्य-समाजी नेताओं के चित्त उद्विग्नता से भर गये थे । पं० पद्मसिंह शर्मा ने इस सन्दर्भ में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम १४-५-१९०७ को प्रेषित पत्र में लिखा था :

"आज एक आत्मीय के प्राइवेट पत्र से यह मालूम करके चित्त बड़ा उद्विग्न और क्षुब्ध हो रहा है कि पंजाब के नेता ला० लाजपतराय को अंग्रेजों ने धोखे से पकड़ कर ता० ९ की रात्रि में स्पेशल ट्रेन से चुपचाप काले पानी भेज दिया ।"[2]

भारत के स्वाधीनता-संग्राम को नयी चेतना प्रदान करनवाले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को आर्य-समाज और उसके नेताओं के प्रति गहरी श्रद्धा-भक्ति थी । उनके लड़के गुरुकुल में पढ़ते थे । उन्होंने दक्षिण आफ्रिका से लौटकर सन् १९१५ में अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना करने के उपरांत १४ जून १९१५ को महात्मा मुंशीराम को लिखा था :

"अहमदाबाद में हाल तो आश्रम खोल दिया है । उसकी नियमावली हिन्दी में बन रही है । तैयार होने से आपका अभिप्राय के लिये भेज दी जायगी ।"[3]

पंजाब की दुर्घटनाओं की जांच के लिए सरकार ने जिस हंटर कमीशन की नियुक्ति की थी, उसकी रिपोर्ट २८ मई १९२० में प्रकाशित हुई । गांधी जी ने हंटर कमीशन की पक्षपातपूर्ण रिपोर्ट तथा खिलाफत को लेकर

---

१ "नये भारत के निर्माता" (१९४९), चयनिका सोमचन्द्र सुमन, पृ० ५६ ।
२ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० १३७ ।
३ "गांधी हिन्दी दर्शन" (प्र०सं०), पृ० ४१८ ।

असहयोग आन्दोलन का निश्चय किया । कलकत्ता कांग्रेस के विशेष अधिवेशन (सितम्बर १९२०) में दीन बन्धु चितरंजनदास के विरोध के बाद भी गांधीजी का असहयोग का प्रस्ताव स्वीकृत होगया ।

भारत के स्वाधीनता-संग्राम में असहयोग-आंदोलन का विशेष महत्व है । अनेक देशभक्तों ने इस आन्दोलन में सक्रिय होने के लिए सरकारी नौकरियों और उपाधियों को तिलांजलि दे दी । इसी आन्दोलन से प्रभावित होकर फरवरी १९२१ में प्रेमचन्द जी ने २० वर्ष की सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया ।[१] सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देने के बाद उन्होंने सक्रिय रूप से राजनीति में भाग तो नहीं लिया, परन्तु पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेख और सम्पादकीय टिप्पणियां लिखकर जनमत के जागरण में उन्होंने पूर्ण सहयोग प्रदान किया । इसी समय जबकि आन्दोलन अपनी चरमसीमा पर पहुंच चुका था, चौरी-चौरा के हिंसात्मक काण्ड के कारण गांधी जी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया । १३ मार्च को गांधी जी गिरफ्तार कर लिए गये और उन्हें छह वर्ष का कारावास दण्ड दिया गया । दिनांक १६-३-१९२२ को अंडर ट्रायल कैदी की हालत में गांधी जी ने साबरमती जेल से सेठ जमनालाल बजाज के नाम पत्र में स्वराज्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था :

" चि० जमनालाल ,

जैसे-जैसे मैं सत्य की शोध करता जाता हूं, मुझे प्रतीत होता है कि उसमें सबकुछ आ जाता है । प्राय: यह प्रतीत होता है कि अहिंसा में वह नहीं है, परंतु उसमें अहिंसा है । - - - - इस धर्म का पालन अपेक्षाकृत सहज हो जाय, इस हेतु मैं इस प्रवृत्ति में पड़ा हूं । और तुम्हारे समान लोगों को होमने में भी नहीं झिझकता । इसका बाह्य स्वरूप हिन्द स्वराज्य है । उसका सच्चा स्वरूप तो उस-उस व्यक्ति का स्वराज्य है । अभी एक भी शुद्ध सत्याग्रही उत्पन्न नहीं हुआ है । इसी कारण यह देर हो रही है । किन्तु इसमें घबराने की तो कोई बात ही नहीं । इससे तो यही सिद्ध होता है कि हमें और भी अधिक प्रयत्न करना चाहिए ।[२]

---

१ " चिट्ठी-पत्री भाग-१ " (१९६२), पृ० १११ ।

२ " बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम " (१९६६), पृ० २६-२७ ।

असहयोग आन्दोलन में देश ने जिस सम्मिलित शक्ति का परिचय दिया था, आन्दोलन के स्थगन के बाद वह खण्ड-खण्ड हो गयी । कांग्रेस में दो दल हो गये-एक अपरिवर्तनवादी (Nochanger)और दूसरा परिवर्तनवादी (Prochanger)। प्रथम दल के लोग गांधी जी की असहयोग और बहिष्कार की नीति पर दृढ रहने के पक्ष में थे और द्वितीय दल के लोग कौंसिलों में प्रवेश करके सरकार की दमननीति का विरोध करना चाहते थे । गया कांग्रेज के अधिवेशन (१९२२) में जब कौंसिल-प्रवेश प्रस्ताव किसी तरह स्वीकृत नहीं हो पाया तो देशबन्धु दास ने सभापति पद से त्यागपत्र देकर स्वराज्य पार्टी का संगठन किया । अगले वर्ष दिल्ली के विशेष अधिवेशन (सितम्बर १९२३) में कांग्रेस ने उन नेताओं को जो कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में थे, कौंसिल-प्रवेश की अनुमति प्रदान कर दी । किन्तु स्वराज्य पार्टी ने कौंसिलों में पहुंचकर कोई रचनात्मक कार्य नहीं किया । इधर अपरिवर्तनवादी दल के लोग भी कोई ठोस कार्य नहीं कर रहे थे । उस समय के प्रसिद्ध समाचारपत्र "जमाना" के सम्पादक मुंशी दयानारायण निगम ने प्रेमचन्द जी को एक पत्र भेजकर इन दोनों पार्टियों में से वे किस पार्टी में हैं, ऐसा प्रश्न किया था, जिसका उत्तर देते हुए १७ फरवरी १९२३ के पत्र में प्रेमचन्द जी ने लिखा था :

"आपने मुझसे पूछा मैं किस पार्टी में हूं । मैं किसी पार्टी में भी नहीं हूं । इस लिए कि दोनों में से कोई पार्टी कुछ असली काम नहीं कर रही है । मैं तो उस आनेवाली पार्टी का मेम्बर हूं जो कौतहुन्नास की सियासी तालीम को अपना दस्तूर-उल-अमल बनाये । स्वराज्य-खिलाफ़त पार्टी की जानिब से कान्स्टीच्यूशन निकला है उससे अलबत्ता मुझे कुल्ली इत्तफ़ाक़ है ।"[१]

स्वराज्य दल के उत्तर प्रदेश में बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने सेठ जमनालाल बजाज के नाम जुलाई १९२५ को एक पत्र लिख भेजा था । इस पत्र में टंडन जी ने स्वराज्य दल के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के मंतव्य को जानने की उत्सुकता प्रकट की है । पत्र का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है :-

---

१" चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२), पृ० १२९-३० ।

"प्रियवर वन्दे ।

स्वराज्य पार्टी का पूरा बल कांग्रेस पर कब्जा करने की ओर लग रहा है । महात्मा जी का इस विषय में क्या हार्दिक मंतव्य है और आप लोग अर्थात् आप, वल्लभभाई, राजगोपालाचार्य जी और राजेन्द्रबाबू क्या करना चाहते हैं यह मैं जानना चाहता हूं । मेरे सामने यह प्रश्न तुरंत ही जोर से उपस्थित होनेवाला है, क्योंकि स्वराज्य दल संयुक्त प्रांत पर कब्जा करना चाहेगा । इस प्रांत पर कब्जा कर लेने से उनका वजन कांग्रेस में बहुत बढ़ जायगा । मैं महात्मा जी की नीति पूरी तरह न जानने के कारण असमंजस में हूं । यदि महात्मा जी कांग्रेस को स्वराज्य दल के हवाले करने पर तैयार हों, क्योंकि मैंने ऐसा सुना है कि उन्हों ने पंडित मोतीलाल को कुछ इसी प्रकार का पत्र लिखा है - तो हम लोग चुनाव इत्यादि के झगड़े में फिर क्यों पड़े ?"[१]

टंडन जी की धारणा सही निकली और सितम्बर १९२५ की पटना कांग्रेस की महासमिति की बैठक में राजनैतिक कार्य का भार स्वराज्य-पार्टी के कंधों पर डाल दिया गया । फलत: कांग्रेस के दोनों दलों के भेद-भाव दूर हो गया । कौंसिलों में प्रवेश करने के बाद स्वराज्य पार्टी का जन-साधारण से कोई सम्बन्ध न रहा । इस सम्बन्ध में श्री पारसनाथ सिंह के नाम अपने ४-८-१९२६ के पत्र में पं० पद्मसिंह शर्मा ने लिखा है :-

"कौंसिलें तो निठल्ले और लीडरत्वलोलुप लोगों के लिए हैं । संसार भर के दुर्व्यसनों में, मैं कौंसिलों को प्रधान समझता हूं । भारत की सामाजिकता के लिए यह क्षयरोग है । कौंसिलों के बायकाट पर लिखने को तो जी चाहता है, बहुत-सी बातें सूझती हैं ।"[२]

असहयोग आंदोलन स्थगित किये जाने के बाद हिन्दू-मुस्लिम एकता का विशाल भवन धाराशायी हो गया था । सन् १९२२ से १९२७ तक देश में साम्प्रदायिक दंगों की बाढ़-सी आ गयी । स्थान-स्थान पर भयंकर

---

१ "पत्र-व्यवहार भाग-१" (१९५८), पृ० ९-१० ।

२ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० ४ ।

हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए । सन् १९२४ में नागपुर के हिन्दू-मुस्लिम दंग को रोकने के लिए प्रसिद्ध गांधीवादी कार्यकर सेठ जमनलाल बजाज के बायें हाथ पर चोट लगी और उनको अस्पताल ले जाना पड़ा । इस चोट के समाचार जब महात्माजी को मिले, तब उन्होंने सेठ जी को लिखा :-

" तुमको चोट लगी, इससे मुझे बिलकुल दु:ख नहीं हुआ । मैं तो मानता हूं कि हम जैसे बहुतों को कदाचित बलिदान होना पड़े । जहर इतना ज्यादा व्याप्त हो गया है और अप्रामाणिकता इतनी ज्यादा फैल गई है कि कुछ शुद्ध व्यक्तियों के बलिदान हुए बिना इस आपत्ति से हमारा छुटकारा नहीं हो सकता । हो सके तो झगड़े की जड़ का पता लगाना ।"[1]

प्रयाग से सेठ जी को इस कार्य के लिए बधाई देते हुए तथा उनके प्रति सम्वेदना प्रकट करते हुए राजर्षि टंडन जी ने लिखा :

"प्रियवर,

वंदे । नागपुर में जिस वीरता से आपने हिन्दू-मुसलमान झगड़े को रोका उस पर बधाई । आपकी चोट का अब क्या हाल है ? विश्वास करता हूं कि अब आप अच्छे होंगे ।"[2]

भारत के शासन-विधान की जांच के लिए सरकार ने नवम्बर १९२७ में "साइमन-कमीशन" की नियुक्ति की । फरवरी १९२८ में कमीशन भारत आया । इस कमीशन में कोई भी भारतीय नहीं था, इसलिए सभी दलों ने उसका विरोध किया । देश में सर्वत्र इस कमीशन का बहिष्कार किया गया और "साइमन वापिस जाओ" के नारे लगाये गये । इस विरोध को सरकार ने लाठी और गोली से रोकने का प्रयास किया । लाहौर में लाला लाजपतराय पुलिस की लाठी के शिकार हुए । लखनऊ में जवाहर-लाल नहेरू पर पुलिस की मार पड़ी । पुलिस के इस अत्याचार की निन्दा करते हुए सेठ जमनालाल बजाज ने नेहरूजी के नाम अपने ७-१२-१९२८ के पत्र में लिखा :-

---

१" बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ० ३४ ।

२" पत्र-व्यवहार भाग-१" (१९५८), पृ० १० ।

"प्रिय भाई श्री जवाहरलाल जी ,

लाहौर और लखनऊ में पुलिस ने जो अत्याचार किये हैं, उनकी खबर पढ़कर और सुनकर दु:ख होता है । एक तरफ लाहौर में पुलिस का कार्य और दूसरी तरफ लोगों की उदासीनता देखकर दु:ख हुए बिना नहीं रह सकता । लखनऊ में आपके ऊपर पुलिस की मार पड़ी, लेकिन चोट ज्यादा न आई, यह आपके पूज्य महात्माजी को दिये हुए पत्र से जानकर कुछ संतोष हुआ । लेकिन पुलिस और सरकार इस तरह अपनी मनमानी कर सके, यह देश के लिए कम लज्जा की बात नहीं है ।"[1]

८ अप्रैल १९२९ को असेम्बली भवन में पब्लिक सेफ्टी बिल पर विचार हो रहा था, उसी समय भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने असेम्बली भवन में बम फेंका । सन् १९२९ में ही राजनैतिक कैदियों के साथ सरकार के दुर्व्यवहार के विरुद्ध भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने जेल में अनशन किया । इस सम्बन्ध में सेन्ट्रल जेल, लाहौर से २४ जुलाई, १९२९ को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा होम मेम्बर, भारत सरकार के नाम लिखे गये पत्र का निम्नांकित अंश द्रष्टव्य है :-

"श्रीमान जी,

होम मेंबर, भारत सरकार,

हमें (भगतसिंह और बी०के० दत्त) १२ जून, १९२९ को दिल्ली के असेम्बली बम केस में आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया । जब तक हम दिल्ली जेल में हवालाती कैदी (अंडर ट्रायल) रहे, हमारे साथ बड़ा अच्छा सलूक किया गया, पर जब से उस जेल से हमारी तब्दीली मियांवाली और लाहौर सेन्ट्रल जेल में हुई, तब से हमारे साथ इखलाकी कैदियों जैसा सलूक किया जा रहा है । पहले ही दिन हमने उच्च अधिकारियों से अच्छी खुराक तथा कुछ और सुविधाओं की मांग की और जेल की रोटी खाने से इन्कार कर दिया । - - -"[2]

जनवरी १९३० में कांग्रेस की कार्य-समिति की बैठक में कौंसिलों के पूर्ण बहिष्कार का निश्चय किया गया । फरवरी १९३० में कांग्रेस की

---

१ --वही--,--पृ०--१६-- "पत्र-व्यवहार - भाग-१" (१९५८), पृ० १६ ।

२ "सरदार भगतसिंह: पत्र और दस्तावेज" (१९७७), पृ० ४४ ।

कार्य-समिति ने गांधीजी और उनके विश्वस्त साथियों को "सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन" करने का अधिकार दे दिया । १२ मार्च, १९३० को गांधीजी दाण्डी-यात्रा के लिए चल पड़े । ५ अप्रैल को उन्होंने दाण्डी पहुंचकर नमक कानून तोड़ा । महात्माजी की दाण्डी-यात्रा में हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने भाग लिया था । महाकवि "निराला" के नाम लिखे श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के १६-४-१९३० के पत्र से संकेत मिलता है कि निराला जी नमक कानून तोड़ने को इच्छुक थे । श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने उनको इस सन्दर्भ में बधाई देते हुए लिखा था :-

" आप नमक कानून तोड़ना चाहते हैं- बधाई ।

जेलयात्रा का विचार तो मेरा और उग्रजी का भी है, आगे हरि की इच्छा ।"[१]

हिन्दी साहित्यकारों में मुंशी प्रेमचन्द भी नमक सत्याग्रह के प्रबल समर्थक थे । इस आन्दोलन की लोकप्रियता तो वे स्वयं अपनी आंखों से देख चुके थे । उन दिनों वे अपनी पूरी शक्ति से इस आन्दोलन का समर्थन कर रहे थे । ७ अप्रैल १९३० को मुंशी दया नारायण निगम को लिखे पत्र के अंत में उन्होंने इस आन्दोलन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए बताया था :

" - - - और क्या अर्ज करूं ? इस "नमक" ने खलजान में डाल रखा है । इत्मीनाने-कल्ब रूखसत हो रहा है ।"[२]

इसके जवाब में आफतके मारे निगम साहब ने कहीं शायद यह लिख दिया कि नमक-आन्दोलन बेवक्त छेड़ा गया है । फिर क्या था, प्रेमचन्द जी ने फौरन पलटकर २३ अप्रैल, १९३० के अपने खत में रद्दा कसा -

" नमक को आप कब्ल-अज-वक्त खयाल करते हैं । जिस तरह मौत हमेशा कब्ल-अज-वक्त होती है, साहूकार का तकाजा हमेशा कब्ल-अज-वक्त होता है, उसी तरह ऐसे सारे काम जिनमें हमें माली या वक्ती नुकसान का अंदेशा हो, कब्ल-अज-वक्त मालूम होते हैं । इस तरीक की कबूलियत ही बतला रही है कि वह कब्ल-अज-वक्त नहीं हैं ।"[३]

---

१ "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), पृ० २०३ ।
२ "चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२), पृ० १७७ ।
३ "-वही-, पृ० १७८ ।

निःसन्देह ही इस आन्दोलन की व्यापकता और जनसाधारण की इसके प्रति सहानुभूति का पूर्ण परिचय गांधी जी की गिरफ्तारी के बाद मिला । इस आन्दोलन की सबसे विशेषता थी - इसमें स्त्रियों का भाग लेना । इस आन्दोलन में घर की चहारदीवारी से बाहर निकल कर विदेशी वस्त्रों तथा शराबी की दुकानों पर धरना देने का कार्य स्त्रियों ने अच्छी तरह सम्पन्न किया । लखनऊ की महिला स्वयंसेविकाओं में प्रेमचन्द जी की पत्नी शिवरानी देवी भी सम्मिलित हो गयी थीं और विदेशी वस्त्रों की दुकान पर धरना देने के अपराध में उन्हें दो महीने का कारावास दण्ड दिया गया था । इस घटना का उल्लेख प्रेमचन्द जी ने जैनेन्द्रकुमार के नाम २५ नवम्बर, १९३० को लिखे पत्र में इन शब्दों में किया है :-

"मेरी पत्नी जी पिकेटिंग के जुर्म में दो महीने की सज़ा पा गईं । कल फैसला हुआ है ।"[1]

इस समय स्वयं जैनेन्द्रकुमार भी स्पेशल जेल, गुजरात (पंजाब)में कैद थे । शिवरानीदेवी की जेल-यात्रा के समाचार पाकर उन्होंने प्रेमचन्द जी को लिखा -

"क्या आपकी पत्नी के जेल जाने पर धन्यवाद दूं ? यह इसलिए भी धन्यवाद का विषय हो सकता है कि आपकी इस तरह जेल जाने की राह और आवश्यकता रुक गयी । कितने पतियों ने पत्नियों को रोक रखा है लेकिन वे पति धन्य हैं जिनकी पत्नियां आगे बढ़कर जेल में पहुंच गयीं और उनको रुकने को लाचार कर गयीं ।"[2]

इस प्रकार यह आन्दोलन अपने आपमें अद्वितीय था । इस आन्दोलन के अंत में सरकार को झुकना पड़ा । परिणामस्वरूप ५ मार्च, १९३१ को गांधी-इर्विन समझौता हो गया । महात्मा गांधी की इर्विन के साथ बातचीत, उनकी शौकतअली और आगाखां से मुलाकात, राउंड-टेबिल कान्फरेंस आदि की विस्तार से चर्चा श्री महादेवभाई देसाई ने सेठ जमनालाल जी को लिखे पत्रों में की गयी है ।[3]

---

१ "चिट्ठी-पत्री भाग-२" (१९६२), पृ० १० ।

२ "चिट्ठी-पत्री भाग-२" (१९६२), पृ० ११ ।

३ "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ० ६८-७२ ।

सन् १९३१ के अंतिम सप्ताह में महात्मा जी इंग्लैण्ड से निराश होकर लौट आये । उन दिनों सरकार बंगाल में आतंकवादियों के दमन के बहाने राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के कठोर दण्ड दे रही थी । कांग्रेस के अनेक कार्यकर्त्ता महात्मा जी के भारत पहुंचने से पहले ही जेलों में भरे जा चुके थे । इन परिस्थितियों में कांग्रेस ने पुन: सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन की घोषणा कर दी । ४ जनवरी, १९३२ को गांधीजी और सरदार पटेल गिरफ्तार कर लिए गए ।[१] अनेक कड़े आर्डिनेन्स लागू किये गये । यह आन्दोलन देशव्यापी था । इसमें देशी रियासतों के कार्यकर्त्ताओं ने भी भाग लिया । स्वाधीनता-संग्राम में देशी रियासतों के कार्यकर्त्ताओं की महत्वपूर्ण भूमिका के अनेक सन्दर्भ-सूत्र हमें सेठ जमनालाल बजाज के साथ हुए देशी रियासतों के कार्यकर्त्ताओं के पत्र-व्यवहार में मिलते हैं ।[२]

इन दिनों प्रेमचन्द जी की समस्त आकांक्षाएं इस आन्दोलन से बंधी हुई थीं । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम ३ जून, १९३२ को प्रेषित पत्र में उन्होंने लिखा था :-

" मेरी आकांक्षाएं कुछ नहीं हैं । इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य-संग्राम में विजयी हों । खाने भर को मिल ही जाता है । मोटर और बंगले की मुझे हविश नहीं । हां, यह जरूर चाहता हूं कि दो चार ऊंची कोटि की पुस्तकें लिखूं, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य-विजय ही है । - - - - "[३]

अगस्त, १९३२ को प्रधानमंत्री मैकडोनल ने पृथक निर्वाचन की घोषणा कर दी । अछूतों के पृथक् निर्वाचन के विरोध में गांधीजी ने जेल में ही आमरण-अनशन आरम्भ कर दिया । इस सम्बन्ध में उन्होंने यरवड़ा-जैल से १९-९-१९३२ को जानकीदेवी बजाज को लिखा था-"- - - अनशन करते-करते जीनेकी कला कैसी है । एक शर्त जरूर है । तमाम मैयाओं को जोगन बनकर बाहर निकलना पड़ेगा और अस्पृश्यों को स्पृश बनकर खुद भी ईश्वरी शक्ति होने का दावा साबित करना पड़ेगा ।"[४]

---

१ ~~बापू के पत्र : पृ० ७४~~ "बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम", पृ० ७४ ।

२ "देखिए: पत्र-व्यवहार भाग-२" (१९५८), पृ० ३२-४४ ।

३ "चिट्ठी-पत्री भाग-२" (१९६२), पृ० ७७ ।

४ "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ० ८२ ।

गांधी जी का हरिजन-दौरा ७-११-१९३३ को वर्धा से शुरू हुआ और २९-७-१९३४ को बनारस में पूरा हुआ ।[1] सन् १९३४ में अजमेर में अस्पृश्यता-निवारण के सिलसिले में हुई सभा में कुछ उपद्रवी लोगों द्वारा सनातनी स्वामी लालनाथ पर हमले किये गये । इससे दु:खी होकर गांधी जी ने वर्धा में उपवास किये ।[2]

सन् १९४२ में साम्राज्यवाद के विसर्जन हेतु महान् क्रांति हुई । बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन में ब्रिटन से अपील की गयी कि वह साम्राज्यवाद का विसर्जन करने का महत्वपूण्य संचय करें । इस अधिवेशन का वर्णन करते हुए पं० कमलापति त्रिपाठी ने अपने आत्मज लोकपति त्रिपाठी को लिखा है:-

"- - - ८ अगस्त सन् १९४२ के सायंकाल ८ बजे थे जब शताब्दियों के अपमान और निर्दलन तथा पतन का बोझ लिए भारत की क्षुब्ध आत्मा ने समस्त दानवी शक्ति सम्पन्न ब्रिटिश सिंह का प्रतिरोध करने का दृढ़ निश्चय किया ।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि युग-विधायक महापुरुषों और साहित्यकारों के पत्रों में नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम-काल की राजनैतिक गतिविधियों के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ-सूत्र उपलब्ध होते हैं । यद्यपि इस काल की राजनैतिक गतिविधियों के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें लिखी गयी हैं, किन्तु उन पुस्तकों इतनी स्वाभाविकता, सजीवता और सरसता नहीं मिलती जितनी कि इन पत्रों में ।

(ग) वर्तमानयुगीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ :

वर्तमानयुगीन राजनैतिक गतिविधियों के बहुत-से सन्दर्भ हमें भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद की "स्वतंत्र भारत की झलक" शीर्षक पुस्तक में मिल जाते हैं । इस पुस्तक में सन् १९५५ से १९६२ के बीचकी अवधि में डा० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा अपनी पुत्रीतुल्य डा० ज्ञानवती दरबार

---

१ ~~-वही-, पृ० १०५~~ "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम", पृ० १०५
२ -वही-, पृ० ११२ ।
३ "बन्दी की चेतना" (सं० २०३० वि०), पृ० ३१ ।

के नाम लिखे गये पत्र संकलित हैं । इन पत्रों में अर्ध अन्तरिम सरकार की स्थापना, संविधान का निर्माण, गणतंत्र-दिवस-समारोह, भारत-विभाजन की समस्याएं, काश्मीर की गुत्थी आदि कई राजनैतिक गतिविधियों की झलक मिलती है । इन गतिविधियों पर राजेन्द्रबाबू ने न केवल प्रकाश ही डाला है, अपितु अपनी प्रतिक्रिया भी प्रकट की है। जैसे काश्मीर की गुत्थी के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है :-

"कश्मीर के प्रश्न को लेकर बहुत-से भ्रम पैदा हो गए हैं । यह बहुत उपयोगी होगा, यदि हम कुछ ऐसे सूत्रों की चर्चा कर सकें जिनके विषय में पूरी सूचना का अभाव होने के कारण हिन्दुस्तान के रूख के बारे में गलतफहमी फैली है । हम इसकी चर्चा कानूनी अथवा नैतिक दृष्टिकोण से कर सकते हैं । जरूरी नहीं कि ये दोनों दृष्टिकोण हमेशा एक सम समान हों ।"[1] इस प्रकार इन पत्रों में स्वतंत्र भारत की अनेक राजनैतिक गतिविधियों की बड़ी सुन्दर और स्पष्ट झलक मिलती है ।

वर्तमान युग की अन्य प्रमुख राजनैतिक घटनाओं में एक घटना है - भारत पर चीन का आक्रमण । हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों में इस घटना के सन्दर्भ भी प्राप्त होते हैं । जैसे, बच्चन जी के नाम ७-१२-१९६२ को लिखे अपने पत्र में पन्त जी युद्ध से उत्पन्न स्थितियों का संकेत करते हुए लिखते हैं :-

"युद्ध के कारण तो देश का वातावरण ही बदल गया है । खैर सशक्त और सुसंगठित तो राष्ट्र को रहना ही चाहिए । चीनियों की दी हुई चेतावनी को आगे हमें भूलना नहीं चाहिए ।"[2]

चीन के आक्रमण के कारण भारतमें एकता की जो लहर दौड़ आई, उसकी ओर इंगित करते हुए बच्चन जी ने श्री निरंकार देव सेवक को लिखा है -

"एकता हर बहाने से अच्छी है - चीन विरोध के बहाने भी - - - चीन-विरोध करना आज भारत को जीने के लिए आवश्यक है ।"[3]

---

१ "स्वतंत्र भारत की झलक" (१९७३), पृ० ९१-९२ ।
२ "पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७१), पृ० ४५ ।
३ "बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ० ६५ ।

वर्तमान युग की एक अन्य उल्लेखनीय राजनैतिक घटना है - पं० जवाहरलाल नेहरू का निधन । पंडित जी के देहावसान से भारत ने एक महान राजनैतिक नेता खो दिया । उनकी मृत्यु से भारत की राजनीति में "नेहरू-युग" का अंत हो गया । राष्ट्रभर में शोक के बादल छा गये । पन्त जी ने ३-६-१९६४ के पत्र में बच्चन जी को लिखा :

"पंडित जी के निधन से पत्र लिखने को जी नहीं किया । एक तरह से सभी प्रकार का उत्साह मन्द पड़ गया । संसार ने जिस प्रकार मरने पर उनको सम्मान दिया उससे उनका प्रच्छन्न व्यक्तित्व उभर आया और देश उनसे गौरवान्वित हुआ ।"[१]

बच्चन जी को पं० जवाहरलाल नेहरू के निकट रहने का अधिक सौभाग्य प्राप्त हुआ है, अतः वे पंडित जी के महिमामंडित व्यक्तित्व से विशेष परिचित हैं । इस सन्दर्भ में डा० जीवन प्रकाश जोशी के नाम अपने २९-५-१९६५ के पत्र में उन्होंने लिखा है :-

"पंडित जी (जवाहरलाल नेहरू) के देहावसान के बाद "मैकबेथ" की ये पंक्तियां मेरे कानों में बराबर गूंज रही है -

"क्योंकि आज से इस दुनिया में बड़ी चीज़ कुछ नहीं रह गई : सिर्फ रह गए गुड़िया-गुड्डे, गौरव और गुमान उठ गया : जीवन मदिरा खींच ली गई और अब जग की मधुशाला में डींग मारने की सौंठी भर बच्ची हुई है ।"[२]

बच्चन जी ने निरंकारदेव सेवक के नाम २२-१०-१९६५ को लिखे पत्र में भविष्य में पाकिस्तान और चीन से भीषण युद्ध की सम्भावना इन शब्दों में व्यक्त की है :-

"भविष्य में पाकिस्तान से और शायद चीन से भी भीषण युद्ध होने की सम्भावना है । सबको अपना कर्तव्य करना होगा । पराजय से हमारा सत्यानाश हो जाएगा । वह हम नहीं होने देंगे ।"[३]

१" पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९०१), पृ० १५७ ।

२"बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ० ६५ ।

३"बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ० ९१ ।

हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों में चुनाव के सन्दर्भ भी मिलते हैं। पं. बनारसीदास जी चुनावों को व्यर्थ मानते हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम अपने २-२-१९५२ के पत्र में मतदान के इतिहास पर एक मधुर एवं मार्मिक कविता लिख भेजी थी । पं० त्रिपाठी के ये पत्र "संमेलनपत्रिका"[२] में छपे हैं ।

इस प्रकार हिन्दी पत्र-साहित्य में उत्तर मध्यकाल से लेकर वर्तमान-युग तक की राजनैतिक गतिविधियों के जो सन्दर्भ-सूत्र प्राप्त होते हैं, उनसे भारत के राजनैतिक इतिहास के अध्ययन में पर्याप्त सहायता मिलती है

२ - सामाजिक सन्दर्भ :

एक समाज की सभ्यता और संस्कृति के प्रामाणिक मूल्यांकन के लिए प्रयोग की जाने वाली कसौटियों में से एक कसौटी वे पत्र हैं जो उस समाज के सदस्यों के द्वारा लिखे गये हैं । भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन नवजागरण-काल में ही हुआ । अत: इस काल को मध्य बिन्दु मानकर हिन्दी पत्र-साहित्य में उपलब्ध सामाजिक सन्दर्भों का अध्ययन निम्नांकित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है :-

(क) पूर्व-नवजागरणकालीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ,
(ख) नवजागरणकालीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ और
(ग) वर्तमानयुगीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ ।

---

१ "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ० ५११ ।
२ "सम्मेलन पत्रिका", श्रद्धांजलि अंक, भाग- ४८, पृ० २३७ ।

"धर्म के स्वराज में था भूमिदान, गजदान ,
हेमदान, गृहदान, प्राणदान, मानदान ।
आई बादशाही तो कलमदान, पीकदान ,
और कई दान थे कटोरदान, पानदान ।।
आये अंजरेज तब दानी गोंददानी रही ।
उजड़ रहा था दान-दानियों का खानदान ।
आया मतदान अब आंखहीन, हाथहीन ,
देते हैं निरक्षर भी पंडितों को ज्ञानदान ।।"

(क) पूर्व-नवजागरण कालीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ :

पूर्व-नवजागरणकालीन सामाजिक परिस्थितियों की झलक हमें डा० काशिनाथ शंकर केलकर कृत "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" शीर्षक शोध-प्रबन्ध के परिशिष्ट-३ में संकलित पत्रों में अधिक स्पष्टरूप में मिलती है। इन पत्रों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था थी जिसमें ब्राह्मणों का स्थान बहुत ऊँचा था। महाराजा पृथ्वीसिंह द्वारा मार्ग वदि ८ सं० १८०३ को रामचन्द्र के नाम लिखे गये पत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि -" ब्राह्मण हमारे इष्टदेव है तिनिही के चरन साही है।"[1] छात्रों को शिक्षा-दीक्षा विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा ही दी जाती थी। शिक्षा देनेवाले गुरु को धन तथा गांवों की सनद प्रदान की जाती थी जिससे उनका तथा उनके विद्यार्थियों का निर्वाह चलता रहे।[2]

इस युग के पत्रों में स्त्री-शिक्षा का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु कहीं-कहीं स्त्रियों की सामाजिक तथा पारिवारिक कठिनाइयों के संकेत अवश्य मिलते हैं। उदाहरण के लिए रामाबाई नामक स्त्री की ओर से लिखे गये पत्र का निम्नांकित अंश देखा जा सकता है -

"राजश्री राजमान राजश्री असमान पुना श्री अंता जी पंथ येतान का मढलेसर से रामाबाई केन आसीरबाद बंचणा - - - - अप्रंच हकीगत जो सासत्रबाबा के बरतमान अैयसे है की कलाल के इहांसे दारू मंगाकर पीते है सो दो चार बर - - - (इस) बातका बोबाठ हुआ आवर इहा हमारा भी नीभाव होता न्ही आब तुमारे तई लीषाते है तुमारे चीतमु आवै सो सही - - -"[3]

स्पष्ट है कि इस पत्र में रामाबाई ने अपने पति की मद्य-प्राशन की बात बताकर उसके कारण निर्मित कठिनाइयों का उल्लेख किया है।

सामाजिक या अर्थ-विषयक व्यवहारों के कारण कभी-कभी समाज में झगड़े भी उठ खड़े होते थे। जब इनका निराकरण आपस में

---

१ "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ० ३८७।
२ -वही-, पृ० ३७९।
३ "१८ वीं० शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ० ३५७।

सम्भव न होता तो शासकीय व्यवस्था का आश्रय लेना पड़ता था । इस संबंध में माधवराव बलाल द्वारा महाराजा पृथ्वीसिंह के नाम कार्तिक - सुदी ४ संवत् १८२७ को लिखा पत्र द्रष्टव्य है ।[1]

इन पत्रों से स्पष्ट होता है कि मध्ययुगीन समाज व्यवस्था वर्णाश्रम पर अवलम्बित थी और प्रजा के क्षेत्र क्षेमकुशल का रक्षण राज्य-शासकों का कर्तव्य था ।

(ख) नवजागरणकालीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में :

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की सामाजिक स्थिति हीनावस्था की पराकाष्ठा पर पहुंच गई थी । समय की प्रगति के अनुसार समाज में आवश्यक सुधार और परिवर्तन करने के स्थान पर अन्ध-विश्वास और अन्धानुकरण का बोलबाला था । नवजागरण के अग्रदूत स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने व्याख्यानों, लेखों और पत्रों से समाज में फैले जात-पांत के भेदों, अन्धविश्वासों, रूढ़ियों तथा कुप्रथाओं पर कुठराघात किया । नवजागरणकालीन सामाजिक परिवर्तनों के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्रों में मिलते हैं ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने नारी-समाज की स्थिति सुधारने का भरपूर प्रयास किया । स्त्री-दुर्दशा की अनेक समस्याओं का मूल विवाह-सम्बन्धी कुरीतियों में था । स्वामी जी ने बाल-विवाह, अनमेल-विवाह , विधवा-विवाह आदि अनेक समस्याओं पर अपने क्रांतिकारी विचार उपस्थित किये । इतना ही नहीं, विधवाओं को सम्पत्ति का अधिकार दिलाने का प्रयास भी उन्होंने किया । इस सम्बन्ध में बाबू मूलराज के नाम २७ जुलाई १८८० को लिखे पत्र यह अंश उद्धरणीय है :-

" - - - सरकार को एक ऐसा नियम पास करने के लिए कहना चाहिए जिससे कि विधवाओं की संतानें अपने पिताओं की स्थावर और जंगम सम्पत्ति के अधिकार को प्राप्त करें और उसे ले सकें । और जो कोई विधवा को किसी प्रकार भी कष्ट दें, वह सरकार का दण्ड भागी बने ।"[2]

---

१ ~~वही~~, पृ० ४१५ । "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ० ४१५

२ "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ० २१३ ।

छूताछात के विचार के कारण पौराणिक कर्मकांडियों ने समुद्रयात्रा को निषिद्ध बना दिया था । किन्तु जैसाकि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को इंग्लैण्ड जाने के लिए प्रेरणा एवं सहायता दी ।[1]

स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक संस्कृति एवं शिक्षा के समर्थक होते हुए भी अंग्रेजी-शिक्षा के विरोधी नहीं थे । जोधपुरनरेश महाराजा जसवंतसिंह के पुत्र की शिक्षा-दीक्षा के विषय में एक पत्र में उन्होंने लिखा था :-

"महाराज कुमार के संस्कार सब वेदोक्त कराइयेगा । २५वर्ष तक ब्रह्मचारी रख के प्रथम देवनागरी भाषा और पुनः संस्कृत विद्या जो कि सनातन आर्य ग्रंथ है जिनके पढ़ने में परिश्रम और समय कम होवे और महालाभ प्राप्त हो इन दोनों को पढ़े । पश्चात् यदि समय हो तो अंगरेजी भी जो कि ग्रामर और फिलासफी के ग्रंथ हैं, पढ़ने चाहिए ।"[2]

स्वामीदयानन्द सरस्वती ने भारतीय विद्यार्थियों को आधुनिक शिल्पकलाएं सिखाने के लिए जर्मनी म भेजने का प्रयत्न भी किया था । उन्होंने १० अगस्त, १८८० को बाबू मूलराज के नाम अपने पत्र में लिखा था-

"मेरा विचार है कि कुछ पुरुष कला-कौशल सीखने के लिए जर्मनी भेज दिये जायें । परन्तु यदि यहीं आर्यावर्त्त में ऐसा सिखानेवाले म पुरुष मिल जायें तो बाहर जर्मनी को आदमी भेजने की कोई आवश्यकता नहीं ।"[3]

इन पत्रों से स्पष्ट होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचार अत्यन्त प्रगतिशील थे ।

नवजागरणकाल में ऋषि दयानन्द सरस्वती के अतिरिक्त चूरू (राजस्थान) में स्वामी गोपालदास ने भी समाज-सुधार के अनेक ~~कस्त~~

---

१ - ~~वही - पृ० ९२-९३ ।~~ "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ० ९२-९३ ।

२ "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-२" (सं० १९९२ वि०), पृ० ९६ ।

३ "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ० २१६ ।

महत्वपूर्ण कार्य किये थे । उनकी समाज-सेवा का विस्तृत परिचय हमें श्री गोविन्द अग्रवाल लिखित "पत्रों के प्रकाश में स्वामी गोपालदास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व" शीर्षक पुस्तक में मिलता है । नारी-शिक्षा के लिए स्वामी जी ने आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व चूरू में "सर्वहितकारिणी पुत्री-पाठशाला" की स्थापना की थी । इस सम्बन्ध में श्री जुगलकिशोर जी बिड़ला के १०-७-१९२२ के पत्र का प्रारम्भिक अंश द्रष्टव्य है :-

"प्रिय महाशय ,

कलकत्ता समाचारपत्र में श्री कृष्णादेवी प्रैषित पत्र पढ़कर ज्ञात हुआ कि आपके अधीनस्थ चूरू पुत्री पाठशाला में अनाथ विधवाएं भी छात्रवृत्ति देकर पढ़ाई जाती हैं और वे इस योग्य बनाई जाती है कि अध्यापिकाओं का कार्यकर सकें - - - यदि योग्य अनाथ विधवायें इस उद्देश्य से आपके यहां पढ़ती हैं तो मेरी तरफ से भी दो विधवाओं को छात्रवृत्ति देकर भर्ती करा दिया जाय ।"[1]

समाज में व्याप्त बुराइयों को रोकने के लिए स्वामी गोपालदास जी निरंतर उद्योग करते रहते थे । श्री नन्दलाला मूंवाल द्वारा मंत्री-सर्वहितकारिणी सभा, चूरू के नाम दिनांक ९-११-१९२१ को लिखित पत्र से ज्ञात होता है कि स्वामी जी ने बाल-विवाह की प्रथा को निरुत्साहित करने के लिए अनेक लोगों से प्रतिज्ञाएं करवाई थीं और इसके लिए अभियान चलाया था ।[2] इस प्रकार नवजागरणकाल में समाजिक क्रांति की दिशा में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गये थे ।

(ग) वर्तमानयुगीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में :-

वर्तमान-युग में महात्मा गांधी, विनोबा भावे, स्वामी सत्यभक्त आदि अनेक समाज-सुधारकों द्वारा सामाजिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया है । महात्मा गांधी के सत्याग्रह-संग्राम में पहली बार भारतीय नारी ने घर की चहारदीवारी से बाहर न निकलकर राष्ट्रसेविका के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । जब-जब कवि देव

---

१ "पत्रों के प्रकाश में स्वामी गोपालदास जी का व्यक्तित्व और कृतित्व"- (सं० २०२५ वि०), पृ० १२२-२३ ।

२ "पत्रों के प्रकाश में स्वामी गोपालदास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व" (सं. २०२५ वि.)(~~१९६९~~), पृ० १५६ ।

जब जानकीदेवी बजाज अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी महिला सम्मेलन की अध्यक्षा बनकर कलकत्ता जा रही थी, तब महात्माजी ने अपने २५-१०-१९३३ के पत्र में यह सन्देश लिख भेजा था ।

" प्रिय भगिनि ,

आप बहनों से परदा तुड़वाने के लिए कलकत्ता जा रही हैं, इसलिए धन्यवाद । परदा वहम ही नहीं है, उसमें मुझे पाप की बू आती है । परदा किससे रखें ? क्या पुरुषमात्र विषयासक्त करते हैं ? क्या स्त्री अपनी पतिव्रता बगैर परदा नहीं रख सकती है ? - - - यदि इस बुद्धि-प्रधान-युग में स्त्री धर्म की रक्षा करना चाहती है तो उसे दरिद्रनारायण की सेवा करनी होगी, शिक्षण लेना होगा । - - - परदा रखकर सीता रामजी के साथ जंगलों में भटकी होंगी ? सीता से बड़ी पवित्र-स्त्री-जगत में कभी हुई है ? बहनों से कहो परदा तोड़ो , धर्म रखो ।"[1]

महात्मा गांधी ने जीवन भर दीन-दुखियों दलितों, पीड़ितों, पतितों और समाज के पिछड़े हुए लोगों को ऊपर उठाने के लिए अथक परिश्रम किया । हरिजनों की स्थिति सुधारने के लिए उन्होंने ७-११-१९३३ से २९-७-१९३४ तक ऐतिहासिक हरिजन-दौरा किया ।[2] उनका अपूर्ण सेवा-कार्य आचार्य विनोबा जी पूरा कर रहे हैं । पं० वियोगीहरि को विनोबा-जी द्वारा ५-११-१९५१ को लिखे पत्र में कहा गया है-

"बावजूद इसके कि हमारे संविधान ने हरिजन-परिजन-भेद मिटा दिया है, हरिजन-सेवा करने की आवश्यकता अब भी बहुत कुछ बाकी है, यह दु:ख के साथ कबूल करना पड़ता है ।"[3]

समाज-सुधार और समाज-सेवा के उद्देश्य से ही स्वामी सत्य-भक्त ने वर्धा में सत्याश्रम की स्थापना की है । श्री बापूलाल सोनी के नाम

१" बापू के पत्र-बजाज परिवार के नाम" (१९६६), पृ० १०३

२" बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ० १०५ ।

३" बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" (१९६०), पृ० ५९ ।

२८-१२-१९४७ के पत्र में उन्होंने अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि :-

" अगर मैं दुनिया को नहीं सुधार सकता तो सत्यसमाज में आये हुए इने गिने व्यक्तियों को तो इतना सुधरा हुआ देखूं कि उनका जीवन सुख शांतिमय ईमानदार हो । कम से कम सत्यसमाज एक विशाल कुटुम्ब हो । - - - बड़े बड़े नेता नहीं सुधर पाते फिर साधारण आदमी क्या सुधरेगा, यह विचार ठीक नहीं । मेरा खयाल इससे उल्टा है । नेता कभी न सुधरेंगे, साधारण आदमी ही सुधरेंगे, नेता तो बड़प्पन में चूर रहते हैं उनका इलाज नहीं हो सकता ।"[१]

वर्तमान-युग की शिक्षा छात्रों को पंगु बनाती जा रही है । शिक्षित बेकारी वर्तमान समाज की जटिल समस्या है । इस समस्या का संकेत बच्चन जी के एक पत्र में इन शब्दों में मिलता है :-

"मुसीबत यह है कि पढ़े-लिखे लोगों को कोई काम सूझता ही नहीं । बेपढ़ा हजार काम सोचता है और करता है । पंगु बनानेवाली शिक्षा को मेरे शाप ।"[२]

वर्तमान समाज की विषमता, स्वार्थपरता और अर्थ-लोलुपता का विश्लेषण करते हुए श्री "निरंकुश" के नाम अपने ७-४-१९७५ के पत्र में बाबू वृन्दावनदास लिखते हैं :-

"वर्तमानकाल में अर्थपिशाचता का साम्राज्य है । वैश्य समुदाय इसका सबसे बड़ा दोषी है । आज का व्यक्ति आबाल-युवा-वृद्ध अर्थ-लोलुप हो गया है और स्वार्थपरता की भावना चरमसीमा पर है । अर्थ-पिशाचता ने हमारे पारिवारिक सम्बन्धों की जड़ें भी हिला दी हैं ।"[३]

इस प्रकार हिन्दी-पत्र-साहित्य में मध्ययुगीन समाज से लेकर वर्तमान युग तक के समाज के उत्थान-पतन की सुन्दर झलक मिलती है ।

---

१ "अनमोलपत्र" (१९५०), पृ० ६-७ ।

२ "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ० ५८ ।

३ "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ० २२६ ।

३ - धार्मिक सन्दर्भ :

भारतीय जन-जीवन में धर्म एक महान् प्रेरणा है, एक महान् शक्ति है । श्री तारकनाथ बाली ने "धर्म" का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है:-

"धर्म है क्या ? इस विषय में कोई एक स्पष्ट उत्तर नहीं दिया जा सकता । लेकिन उसे समझने के लिए हम कह सकते हैं कि इसके दो रूप हैं या इसके दो अर्थ हैं । एक तो उसका व्यापक अर्थ और एक संकुचित अर्थ है । और यह जानना भी आवश्यक है कि बहुत पहले समाज ने धर्म के व्यापक रूप को अपनाया था, लेकिन जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे ही वैसे धर्म को संकुचित अर्थों में ग्रहण करने का प्रयास किया जाने लगा । धर्म के व्यापक अर्थ में वह धारण करने वाला है । जो नियम या रीति-रिवाज, समाज को धारण करता है, वह धर्म है ।"[१]

इससे स्पष्ट है कि वैदिककाल में "धर्म" को व्यापक रूप में ग्रहण किया गया था, परंतु कालान्तर में उसका रूप संकुचित होता गया । भारतीय नवजागरणकाल में अनेक धार्मिक आन्दोलन हुए । इस काल में धर्म के व्यापक स्वरूप को ग्रहण करने का प्रयास किया गया । अत: इसे केन्द्र बिन्दु समझकर हिन्दी पत्र-साहित्य में प्राप्त धार्मिक सन्दर्भों का अध्ययन अधोलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है :-

(क) पूर्व-नवजागरणकालीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में,
(ख) नवजागरणकालीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ और
(ग) वर्तमानयुगीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ ।

(क) पूर्व-नवजागरणकालीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ :

पूर्व-नवजागरणकालीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में स्वामी प्राणनाथ और उनके प्रणामी धर्म की चर्चा विशेष महत्वपूर्ण है । स्वामी प्राणनाथ महाराजा छत्रसाल के गुरु थे । उन्हीं के वरदान से छत्रसाल ने औरंगजेब के जीवनकाल में उसके साम्राज्य को तोड़कर बुन्देलखण्ड में एक स्वतंत्र

---

१ "सांस्कृतिक परम्परा और साहित्य" (१९५९), पृ० ११२ ।

सत्ता की स्थापना कर ली थी ।[1]

जिस प्रकार प्राचीनकाल में सम्राट् अशोक ने बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए अनेक धार्मिक विद्वानों को देश-विदेश में भेजा था, उसी प्रकार मध्यकाल में सम्राट्, छत्रसाल ने उदार धर्मावलम्बी स्वामी प्राणनाथ के विचारों के प्रचारार्थ देश-विदेश में अनेक वैरागी-साधुओं को भेजा था । इस तथ्य की पुष्टि उनके मार्गशीर्ष वदि ८ संवत् १७७६ के पत्र से होती है । यह पत्र उन्होंने जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह के नाम लिख भेजा था । इस पत्र का एक अंश उदाहरणार्थ यहां प्रस्तुत किया जाता है :-

"--- आगे वैरागी साथी चरचा के सुनिबे कौं बुलाए हते सु इहां ते विदा कर हैं ।"[2]

यहां वैरागी साथी से स्वामी प्राणनाथ के अनुयायी की ओर संकेत है । इससे स्पष्ट है कि स्वामी प्राणनाथ के धार्मिक विचारों के प्रसार-प्रचार में महाराजा छत्रसाल का बहुमूल्य योग रहा है ।

भारतीय हिन्दू-समाज के व्यक्तियों के मन में पवित्र तीर्थों की यात्रा करने की स्वाभाविक रूप से इच्छा रहती आई है । पूर्व-नवजागरणकाल में यातायात की असुविधाएं होने के कारण तीर्थयात्रा आज के समान सुलभ और सरल नहीं थी, तथापि धार्मिक रूचि के धनिकलोग सपरिवार तीर्थयात्रा के लिए निकलते थे । इस सम्बन्ध में श्री माधवराव बलाल द्वारा महाराजा पृथ्वीसिंह के नाम श्रावण वदि ४ संवत् १८२७ को लिखा पत्र यहां हम उद्धृत करते हैं :-

।। श्री ।।

श्री महाराजाधीराज श्री महाराजा श्री राज राजेन्द्र सवाई पृथ्वीसींग जी योग्य श्री पंडीत मुष्य प्रधान माधवराव वल्लाल के आसीर्वाद वंचने अठाका स्माचार भला छे आपका सदा भला चाहिए जे आप्र च राजश्री

---

१ "देखिए : पूर्वोद्धृत जगतराज के नाम महाराजा छत्रसाल के पत्र का अंश ।

२ "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल"
(१९७५), पृ० १०३ ।

नारायण कृष्ण मुनसी याकी बाहान श्री बदरीका श्रम की जात्रा के लसकर में आई अठासु श्री पुष्कर का जात्रा कुं जाय है सो आप जयपुर से इनी के लार प्यादे दै कें पुष्कर कों पोहचाय देवोला औ हर तरह उठें इनीका गोर करवोला हेमेशा कागल स्माचार लिषात रहोला ।"[1]

भारतीय प्रजा के जीवन में दान-धर्म का अपना पृथक् महत्व रहा है । पर्वकाल में तीर्थक्षेत्र पर जाकर स्नान करके पुण्य-प्राप्ति के उपलक्ष्य में क्षेत्रवासी ब्राह्मणों को दान-धर्म किया जाता था । नासिक और त्र्यंबकेश्वर के अनेक पुरोहितों के पास इस प्रकार के दान-पत्र हैं ।[2] राजाओं द्वारा ऐसे अवसरों पर गांव दान दिये जाते थे । यह दान हमेशा के लिए जारी रहे इसलिए उसे ताम्र-पत्र पर लिखा जाता था ।

इस प्रकार पूर्व-नवजागरणकाल से सम्बन्धित पत्रों में धर्म-प्रचार, तीर्थ-यात्रा, दान-धर्म आदि अनेक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।

(ख) नवजागरणकालीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ :

भारतीय नवजागरणकाल में अनेक धार्मिक आंदोलन हुए जिनमें ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय है । नवजागरणकाल के धार्मिक आन्दोलनों में आर्यसमाज का स्थान सर्वोच्च है । क्योंकि इस काल के धार्मिक आन्दोलनों का मूल-तत्व ज्ञान-निष्ठा है और आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती की ज्ञान-निष्ठा सर्वविदित हैं ।आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "जगद् गुरु शंकराचार्य के पश्चात् भारत ने ऐसे प्रखर तेजपुंज को प्राप्त कर वैदिक धर्म तथा आर्य-संस्कृति की रक्षा की ।"[3]

स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्रों में नवजागरण-काल की धार्मिक प्रवृत्तियों के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ प्राप्त होते हैं । इन पत्रों से

१" १८ वी० शती के हिन्दी पत्र" (१९७०) पृ० ४१४-१५ ।

२ -वही-, पृ० ३५५ ।

३" हिन्दी-साहित्य का इतिहास", परिवर्धित संस्करण, पृ० ४४५ ।

विदित होता है भारत में गो-रक्षणार्थ सर्वप्रथम आंदोलन करनेवाले स्वामी दयानन्द सरस्वती ही थे ।[1] इन पत्रों में शास्त्रार्थ एवं धार्मिक खण्डन-मण्डन के विस्तृत सन्दर्भ भी मिलते हैं । जैसे, "भारतमित्र" के सम्पादक के पास प्रेषित एक पत्र में स्वामी जी ने उक्त पत्रिका के ९ अगस्त १८८३ में छपे इस तथ्य का कि -" मुल मुसलमानों के मजहब का मूल अथर्ववेद है -" अनेक तर्कों से खण्डन किया है ।[2]

जैसा कि" आर्यसमाज का इतिहास भाग-१ " में श्री इन्द्र-विद्यावाचस्पति ने लिखा है, थियोसोफिकल सोसायटी के संस्थापक कर्नल अल्काट स्वामी दयानन्द सरस्वती को अपना पथ-प्रदर्शक मानते थे ।[3] "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" शीर्षक पत्र-संग्रह में संकलित स्वामी के पत्रों से ज्ञात होता है कि कर्नल अल्काट ने बाद में चमत्कारों का प्रदर्शन शुरू कर दिया था ।[4] महात्मा मुंशीराम द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-१" में, स्वामी जी द्वारा "भारत-मित्र" के सम्पादक के नाम लिखित पत्रों में थियोसोफिकल सोसायटी की लीला पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है ।[5] इस प्रकार स्वामी जी के पत्रों में तत्कालीन धार्मिक अंध-विश्वासों पर तीव्र प्रहार किया गया है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती मूर्तिपूजा के विरोधी थे । कानपुर के रईस गुरुप्रसाद और प्रतापनारायण द्वारा मंदिर बनवाए जाने पर स्वामी जी ने उनको लिखा था -

" कोई कला-कौशल का कारखाना खोलते जिससे देश और जाति का भला होता ।"[6]

१" ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन"(१९५५), ३५४

२ -वही-, पृ० ४४८ ।

३" आर्यसमाज का इतिहास भाग-१"(१९५७), पृ० ११९ ।

४ "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन", पृ० २५६ ।

५" ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-१", पृ० ६८-७१ ।

६" ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, पृ० २१४ ।

इससे स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती आधुनिकता के अग्रदूत थे । राष्ट्र का अभ्युत्थान उनका मुख्य उद्देश्य था । वैदिक संस्कृति का अवलम्बन लेकर उन्होंने भारतीय नवजागरण का नेतृत्व किया और देश की सांस्कृतिक चेतना को एक नया मोड़ दिया ।

चूरू(राजस्थान) के धार्मिक-सामाजिक नेता स्वामी गोपालदास जी से सम्बन्धित पत्रों से ज्ञात होता है कि उन्होंने स्व० सेठ जुगलकिशोर बिड़ला की सहायता से चूरू में एक सुन्दर धर्मस्तूप का निर्माण करवाया था ।[१] स्तूप बनाने का उद्देश्य यही था कि स्तूप के ऊपर खुदे हुए धार्मिक श्लोकों से लोग शिक्षा ग्रहण करें और सन्मार्ग पर चलें ।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती और स्वामी गोपालदास से सम्बन्धित पत्र-साहित्य में नवजागरणकाल की धार्मिक प्रवृत्तियों के अनेक सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं ।

(ग) वर्तमानयुगीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ :

वर्तमान युग की धार्मिक प्रवृत्तियों के कई महत्वपूर्ण सन्दर्भ-सूत्र हमें स्वामी सत्यभक्त, आचार्य विनोबा भावे आदि के पत्रों में मिलते हैं । श्री रघुवीरशरण दिवाकर के नाम १५-१२-१९३८ को लिखे पत्र में मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में स्वामी सत्यभक्त ने लिखा है -

"- - - निस्संदेह मूर्तिपूजा के नाम पर सब से अधिक नहीं तो अधिक गड़बड़ हुई है, परन्तु इसका कारण उसकी व्यापकता और महत्ता है । विशाल के दोष भी विशाल होते हैं । - - - बर्फीले देश में तो जूते भी मंदिर में पहुंच सकेंगे । शिष्टाचार के नियम देशकाल के अनुसार होने चाहिएँ[३]

~~१- कर्मिष्ठ दयानन्द सरस्वती के मन और विज्ञान~~ -(१९५५)-, ~~पृ० २२४~~

१ "पत्रों के प्रकाश में स्वामी गोपालदास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व" (सं० २०२५ वि०), पृ० १२७-२८ ।

२ "अनमोल पत्र" (१९५०), पृ० २६-२७ ।

मदालसा अग्रवाल को लिखित एक पत्र में आचार्य विनोबाजी ने मूर्तिपूजा की व्याख्या इन शब्दों में की है ।

"हिन्दू-धर्म मूर्तिपूजक है । मूर्तिपूजा के मानी है कि प्रत्येक वस्तु के पीछे कोई अमूर्त तत्व छिपा हुआ है, अथवा दूसरे शब्दों में मूर्त याने अमूर्त का प्रकाश है, यह ध्यान में लेते हुए आस-पास की हर वस्तु में से, या घटना में से, या व्यक्ति में से बोध ग्रहण करना ; ऐसी जिसकी दृष्टि हो जाय, उसका समय कहीं भी और कभी भी और किसी भी तरह बरबाद नहीं हो सकता ।"[१]

इसी प्रकार हिन्दू-धर्म की कुछ पवित्र चीजों पर प्रकाश डालते हुए आचार्य विनोबा जी लिखते हैं :-

"विष्णु-सहस्रनाम, तुलसी, गंगाजल इत्यादि सब वस्तुएं हम हिन्दुओं के लिए मन का मैल धोने के लिए उपयोगी है । मुझ पर उनका विलक्षण परिणाम होता है । वह क्यों होता है, यह नहीं कहा जा सकता । होता है सही । इसीलिए हम "हिन्दू" कहलाते हैं ।"[२]

प्रेमचन्द जी प्रत्येक टकेपंथी पुजारी को ब्राह्मण मानने के लिए तैयार नहीं थे । उन्होंने सर्वत्र इसी धन-लोलूप पंडा-पुरोहित वर्ग की स्वार्थपरता और धूर्तता का विरोध किया है । उन्होंने इस सम्बन्ध में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को अपने एक पत्र में लिखा था :-

"पाखंड और कट्टरता और सीधे-सादे हिन्दू समाज के अन्ध-विश्वास का फायदा उठाना इन पुजारियों और पंडों का धंधा है और इसीलिए मैं उन्हें समाज का एक अभिशाप समझता हूं और उन्हें अध:पतन के लिए उत्तरदायी समझता हूं ।"[३]

इस पत्र से स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द जी धूर्त और स्वार्थी पंडा-पुरोहित-वर्ग के विरोधी थे वे ब्राह्मणद्रोही नहीं थे । उन्होंने इस पत्र में पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि "ब्राह्मण का मेरा आदर्श सेवा और त्याग है, वह कोई भी हो ।"

---

१ "विनोबा के पत्र" (१९६२), पृ० ८१

२ -वही-, पृ० ९९ ।

३ "चिट्ठी-पत्री" भाग-२ (१९६२), पृ० ८८ ।

सन् १९६६ में भारत के साधुओं ने गोहत्या प्रतिबन्ध के सम्बन्ध में एक आन्दोलन चलाया था । इस आन्दोलन के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए पन्त जी ने बच्चन जी के नाम अपने एक पत्र में लिखा था -

"- - - यह सब चुनाव का नाटक है - ये मध्ययुगों के पथराए प्रतीक साधुलोग कभी देश के काम नहीं आए । आज विरोधी दलों के हाथ के खिलौने बने हैं ।"[१]

इन उद्धरणों में एक ओर जहां वर्तमान युग की धार्मिक प्रवृत्तियों, मान्यताओं और परम्पराओं की झांकी मिलती है, वहां दूसरी ओर पत्र-लेखकों के धार्मिक दृष्टिकोण का परिचय भी मिलता है ।

इस प्रकार पूर्व-नवजागरणकाल से लेकर वर्तमान युग के पत्र-साहित्य में प्राप्त धार्मिक सन्दर्भों से यह स्पष्ट होता है कि धर्म का व्यक्ति और समाज के व्यावहारिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । धर्म द्वारा निर्देशित समाज के विकास में गत्यवरोध आ जाना निश्चित है । अतएव धर्म के सांस्कृतिक पक्ष के पुनर्मूल्यांकन की सदैव आवश्यकता बनी रहती है ।

४ - साहित्यिक सन्दर्भ :

साहित्यकार के व्यक्तित्व-कृतित्व के साथ उसके युग-परिवेश को समझने में जितनी सहायता उसके पत्रों से मिलती है, उतनी उसके भारी-भरकम ग्रंथों से नहीं । इस दृष्टि से पं० रामशंकर द्विवेदी का यह कथन सर्वथा उचित जान पड़ता है कि -" - - - साहित्यकारों के पत्रों का प्रकाशित न होने का अर्थ है, हिन्दी साहित्य की प्रामाणिक सामग्री का समाप्त हो जाना - - - पत्रों के साहाय्य के बिना साहित्य का प्रामाणिक विवरण तैयार ही नहीं किया जा सकता ।"[२]

भारतेन्दु-युग से लेकर वर्तमानयुग के अनेक साहित्यकारों के पत्र फुटकर रूप में और पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं । इन पत्रों में समकालीन साहित्यिक गतिविधियों के अनेक बहुमूल्य सन्दर्भ प्राप्त होते हैं । विवेचन की सुविधा की दृष्टि से इन सन्दर्भों का अध्ययन इन शीर्षकों के

---

१ "पन्त के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७१), पृ० २४३ ।

२ "परिषद पत्रिका", जनवरी १९७२, पृ० ९१-९२ ।

अन्तर्गत किया जा सकता है :-

(क) साहित्यिक वाद-विवादों और आन्दोलनों के सन्दर्भ ,

(ख) साहित्यिक चोरी के सन्दर्भ ,

(ग) साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति और सम्पादकों के पारस्परिक राग-द्वेष के सन्दर्भ और

(घ) साहित्यिक समारम्भों, गोष्ठियों आदि के सन्दर्भ ।

अब हम इनमें से प्रत्येक वर्ग के सन्दर्भों पर क्रमश: विस्तार से विचार करेंगे ।

(क) साहित्यिक वाद-विवादों और आन्दोलनों के सन्दर्भ :

महान् साहित्यिकों के जीवन में अनेक वाद-विवाद उत्पन्न हुआ करते हैं । कुछ विवाद व्यक्तिगत स्तर से उत्पन्न होकर समष्टिगत बन जाते हैं । इन विवादों का सामयिक परिस्थितियों से कम सम्बन्ध नहीं होता । चूंकि वैयक्तिक पत्रों में सामयिक परिस्थितियों की स्पष्ट अंकन रहता है, इसलिए साहित्यिकों के वैयक्तिक पत्रों में साहित्यिक वाद-विवादों और आन्दोलनों के अनेक प्रामाणिक एवं रोचक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं ।

"वादे-वादे जायते तत्वबोध:" सिद्धान्त के अनुसार महान् साहित्यिकों के बीच उत्पन्न वाद-विवादों से तथा उनके द्वारा चलाये गये आन्दोलनों से कुछ ऐसे निष्कर्ष निकलते हैं जो युग और साहित्य की प्रगतिशीलता के लिए सहायक हो सकते हैं । परंतु जैसाकि डा० सुरेश सिनहा ने कहा है, "आंदोलन का उद्देश्य व्यापक होना चाहिए।"[1]

हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों में प्राप्त साहित्यिक वाद-विवादों के सन्दर्भों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम दो श्रेणियों में उपविभाजित कर सकते हैं :-

(अ) भाषा-सम्बन्धी वाद-विवादों के सन्दर्भ और

(आ) प्रवृत्ति और नीति-विषयक आन्दोलनों के सन्दर्भ ।

सबसे पहले हम भाषा-सम्बन्धी वाद-विवादों के सन्दर्भों पर विचार करेंगे ।

(अ) भाषा-सम्बन्धी वाद-विवादों के सन्दर्भ :

भाषा मनुष्य के विचारों की वाहक है और किसी देश

---

१ - हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास (१९६५), पृ० ५ ।

या राष्ट्र के संगठन के लिए अत्यन्त आवश्यक साधनों में से एक है । हिन्दी आज हमारे देश की राष्ट्रभाषा है । संसार की विकसित भाषाओं में उसकी गिनती होती है । परन्तु इस रूप को प्राप्त करने के लिए उसे विकास की अनेक अवस्थाओं से गुज़रना पड़ा है । उसके लिए समय-समय पर अनेक व वाद-विवाद और आन्दोलन हुए हैं । यहां उन्हीं वाद-विवादों में से कुछ महत्वपूर्ण विवादों पर साहित्यकों के पत्रों के माध्यम से प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

(1) हिन्दी- उर्दू- हिन्दुस्तानी विवाद :

हिन्दी-भाषा के इतिहास में यह एक बहुचर्चित विवाद है । यद्यपि १४ सितम्बर, १९४९ में भारतीय संविधान द्वारा "नागरी लिपि में लिखी हिन्दी" को राष्ट्रभाषा घोषित किये जाने से इस विवाद का अन्त हो गया है, किन्तु भाषा-सम्बन्धी विवादों की चर्चा में इसका अपना अलग महत्व है । इसी विवाद के कारण आधुनिक हिन्दी के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और राजा शिवप्रसाद सिंह के बीच मतभेद हो गया था, और इसी विवाद के कारण राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन तथा महात्मा गांधी के बीच विरोध उत्पन्न हो गया था । इस विवाद पर बहुत-सी पुस्तकें भी लिखी गयी हैं । यहां हम साहित्यकारों एवं महापुरुषों के पत्रों के आधार पर इस विवाद के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे ।

हिन्दी-पत्र-साहित्य में इस विवाद के सन्दर्भ खोजने से पहले यह बता देना आवश्यक है कि व्याकरण के स्तर पर हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी प्राय: एक ही हैं । इन तीनों भाषा-रूपों का मूलाधार दिल्ली-मेरठ की खड़ीबोली है ।[१] हिन्दी और उर्दू में केवल शब्द-समूह की दृष्टि से ही अंतर है । हिन्दी में संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का बाहुल्य है और उर्दू में अरबी-फारसी शब्दों का बाहुल्य है । "हिन्दुस्तानी" शब्द का प्रयोग कभी "हिन्दी" के अर्थ में, कभी "उर्दू" के अर्थ में तथा कभी हिन्दी + उर्दू दोनों के मिले-जुले रूप में हुआ है । "हिन्दुस्तानी" शब्द

१" हिन्दी भाषा: उद्भव , विकास और स्वरूप " (विवेचन),
" हिन्दी-साहित्य का इतिहास" (१९७३),
संपा० डा० नगेन्द्र, पृ० xxix

मूलत: विशेषण है । इस दृष्टि से इस शब्द का प्रयोग भारत की किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा भाषा के लिए किया जा सकता है । सामान्यत:, इस शब्द का प्रयोग भाषा के सन्दर्भ में सरल हिन्दी और सरल उर्दू अर्थात् बोलचाल वाले रूप के प्रयोग में ही होता है । यद्यपि आज "हिन्दी" शब्द भाषा के अर्थ में रूढ़ हो गया है तथापि बीसवीं शती के मध्यतक "हिन्दुस्तानी" शब्द का प्रयोग भी होता रहा है ।[1]

इस प्रकार हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी वस्तुत: खड़ीबोली या सामान्य हिन्दी की शैलियां ही हैं । यहां यह भी स्मरणीय होगा कि अठारवीं शती के अंत तक "उर्दू" का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था । इस आधार पर हिन्दी और उर्दू को कम से कम १८ वीं शती तक दो पृथक् भाषाएं मानने का प्रश्न ही नहीं था ।[2]

हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी को लेकर देश में पीछे जो विवाद बढ़ा उसके मूल में अंग्रेज साम्राज्यवादियों की दूरदर्शी कूटनैतिक चाल थी जिसकी रचना फोर्ट विलियम कालेज में की गयी थी । इस कालेज की स्थापना सन् १८०० ई० में कलकत्ते में की गयी थी । इसकी स्थापना होनेके बाद जान गिलक्राइस्ट "हिन्दुस्तानी" विभाग के अध्यक्ष बनाये गये । यह हिन्दुस्तानी "हिंदवी", "हिंदुई" या पुरानी खड़ीबोली का ही एक रूप था, किन्तु गिलक्राइस्ट और उन जैसे अन्य अंग्रेज विद्वानों ने इसके अर्थ में परिवर्तन कर उसे उर्दू का पर्याय बना दिया । इस प्रकार हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी के झगड़े में गिलक्राइस्ट तथा उन जैसे अंग्रेज विद्वानों का बहुत बड़ा हाथ है ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को शांतिनिकेतन के विद्याभवन से वररुचिकृत "पत्रकौमुदी" की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है, उसमें अन्य भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी पत्र-लेखन के भी पांच उदाहरण दिये गये हैं । इस हस्तलिखित प्रति में हिन्दी के लिए "हिन्दुस्थानीय-भाषा" शब्द का प्रयोग किया गया है । "हिन्दुस्थानीय भाषा" के

---

१ "हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास" (१९७०),
डा० शिवराम वर्मा, पृ० ३८-३९ ।

२ -वही-, पृ० ३८ ।

पांच पत्र अन्य भाषा-पत्रों के साथ बंगला लिपि में दिये गये हैं और उन पर बंगला संवत् १२०४ का उल्लेख है । इस हस्तलिखित प्रति में दिये गये "हिन्दुस्थानीय भाषा" के पत्रों के नमूनों के पर्यवेक्षण से आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं :-

(१) हिन्दी उन दिनों राजकीय और अन्तरप्रान्तीय व्यवहार की भाषा थी । उसमें पत्र लिखने का ढंग सिखाया जाता था ।

(२) "हिन्दुस्थानीय" नाम अंग्रेजों का दिया हुआ नहीं है और न उससे उर्दू (अर्थात् अरबी फ़ारसी से प्रभावित भाषा का ही बोध होता था ।

(३) उन दिनों विशुद्ध संस्कृत-शैली में लिखे हुए पत्रों में अरबी-फ़ारसी के व्यावहारिक शब्द निःसंकोच ग्रहण किये जाते थे ।

(४) यह कहना कि खड़ी बोली में गद्य लिखने का आरम्भ लल्लू लाल जी आदि ने अंग्रेजों की प्रेरणा से किया था, एकदम निराधार और गलत है । बहुत पहले से खड़ी बोली में आज की हिन्दी के समान गद्य लिखा जाता था । वह व्यावहार की भाषा थी और विशुद्ध संस्कृत-शैली में उसमें पत्र लिखे जाते थे ।[१]

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि "उल्लिखित स्थान पर "हिन्दुस्थानी" का अर्थ मूल हिन्दुस्तानी या हिन्दी है और वह ईस्ट इंडिया कम्पनी की हिन्दुस्तानी से अनेक अंशों में भिन्न है ।"[२]

डा० वार्ष्णेय ने स्वसम्पादित "प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह" में संकलित भारतीय राजाओं एवं नवाबों और कम्पनी द्वारा एक दूसरे को लिखे गये पत्रों की उक्त हस्तलिखित प्रति में दिये गये पत्रों से तुलना कर आगे लिखा है कि -" इसमें तथा उन पत्रों में केवल जनसाधारण में प्रचलित

---

१ "२०० वर्ष पुरानी खड़ीबोली के पत्रों के नमूने" (लेख), "विशाल भारत", अप्रैल १९४०, पृ० ३६७-६८ ।

२ आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका "(१९७१), पृ० ३०० ।

अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है ।"[1]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, "प्राचीन हिन्दी-पत्रसंग्रह" में अनेक स्थानों पर जनसाधारण में प्रचलित भाषा के लिए "हिंदवी" और "हिंदुई" शब्द का प्रयोग किया है ।[2]

"हिंदवी" शब्द का प्रयोग काशीराज चेतसिंह द्वारा संवत् १८५० में जयपुर के राजा प्रतापसिंह के नाम लिखित पत्र में भी मिलता है । जैसे -

" - - - आपका कृपापत्र आया करै सो हिंदवी लिखा आवै जो हम आप पढ़ लेवें - - -"[3]

इन पत्रों से स्पष्ट होता है कि पहले हिन्दी भाषा "हिंदवी" "हिंदुई" और "हिन्दुस्थानी" नामों से प्रचलित थी जिसमें अरबी-फारसी के व्यावहारिक शब्द नि:संकोच ग्रहण किये जाते थे । परन्तु गिलक्राइस्ट और उन जैसे अंग्रेज विद्वानों ने "हिन्दुस्तानी" को उर्दू का पर्याय बना दिया । श्री गिलक्राइस्ट की भ्रमपूर्ण नीति का विरोध उनके बाद हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष के स्थान पर आनेवाले विलियम प्राइस ने ११ अक्टूबर १८२४ को कौंसिल के मंत्री श्री रडैल महोदय के नाम पत्र भेजकर किया ।[4] किन्तु गिलक्राइस्ट ने हिन्दुस्तानी की जड़ें बहुत मजबूत बना दी थीं । सन् १८३७ के एक्ट के बावजूद भी अदालतों में हिन्दी के बदले उर्दू को ही स्थान दिया गया ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र राजा शिवप्रसाद सिंह "सितारे हिन्द" को अपना गुरु मानते थे, किन्तु हिन्दी उर्दू के प्रश्न पर दोनों में मतभेद था

---

१ "आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका" (१९७१), पृ० ३०१ ।

२ "प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह" (१९५९), पृ० ११ तथा पृ० १५ ।

३ "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ० ४४९ ।

४ "फोर्ट विलियम कालेज" (प्र०सं०),
डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० ११७ ।

भारतेन्दु जी अब शुद्ध हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए आन्दोलन कर रहे थे, तब राजा साहब शुद्ध हिन्दी का विरोध कर उसमें फ़ारसी का मिश्रण कर रहे थे । सरकारी अधिकारियों का सहयोग भी उन्हें प्राप्त था । इधर भारतेन्दु जी अपने आन्दोलन के कारण सरकारी कोप का भाजन बन गये । सरकार ने उनके द्वारा सम्पादित "कवि-वचन सुधा", हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" और "बाला बोधिनी" नामक पत्रिकाओं को सहायता देना बन्द कर दिया । भारतेन्दु जी को "बालाबोधिनी" पत्रिका बहुत प्यारी थी, किन्तु सरकार ने जब उसे भी खरीदना बन्द कर दिया, तब उन्हें बहुत दु:ख हुआ । इस सन्दर्भ में उन्होंने पं० चिन्तामणि के नाम एक पत्र लिखा है । हिन्दी-उर्दू-विवाद की दृष्टि से यह पत्र महत्वपूर्ण है । अत: यहां हम उसके कुछ अंश प्रस्तुत करते हैं :-

"श्री युक्त प्राणोपम पं० चिन्तामणि शर्मणे भगवत स्मरण पूर्वक निवेदन मिदं हमारे वात्सल्यमय का परमपात्र क०व०सु० जो अब आपके हस्तगत है - - - हाय ! पश्चिमोत्तर देश के हेतु मैं सिर पटक दूं क्या करूं कुछ सूझता ही नहीं । - - - - यह तो हुआ । अब नई बात सुनिये । बालाबोधिनी का नाम हिन्दी समाज के सामाजिक मात्र जानते हैं ।- - - सरकार ने इस नये वर्ष से इसका लेना बन्द किया । इसका कारण हमारी हिन्दी है जो सर्वदा विरोधियों के हृदय में खटकती है । यह सच है कि बहरों को नेत्र नहीं होते केवल कान होते हैं । अन्यथा हिन्दी की यह दुर्दशा नहीं होती - - - "[1]

इससे स्पष्ट है कि हिन्दी-उर्दू का विवाद अंग्रेजों की "फूट डालो और राज करो" नीति का परिणाम है ।

हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता देने का प्रश्न पहले-पहल भारत के अहिन्दी-भाषी नेताओं ने ही उठाया है । नवजागरण-काल में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उसे "आर्यभाषा" घोषित किया और उसे राजभाषा बनाने के लिए सरकार के पास ~~स्थान-स्थान-से-~~

---

१ "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" (१९७६), मदन गोपाल, पृ० ९० ।

स्थान-स्थान से स्मरण-पत्र भिजवाये ।[1] महर्षि दयानन्द सरस्वती के बाद हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय स्वतंत्रता-संग्राम के कर्णधार महात्मा गांधी को है । उन्होंने अफ्रिका में रहते हुए ही हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने की योजना सोच रखी थी । स्थायी रूप से अफ्रिका के प्रवास से भारत आने के पूर्व भी उन्होंने १९०९ ई० में, 'हिन्द-स्वराज्य' में राष्ट्रभाषा हिन्दी के औचित्य का प्रतिपादन किया था । अफ्रिका-प्रवास से लौटकर जब उन्होंने सन् १९१५ में, अहमदाबाद में आश्रम की स्थापना की, तब महात्मा मुंशीराम (स्वामी-श्रद्धानन्द) को १४ जून, १९१५ के पत्र से सूचित किया था कि आश्रम की नियमावली हिन्दी में बन रही है ।[2] हिन्दी के सम्बन्ध में अपनी मान्यता को स्पष्ट करते हुए उन्होंने सन् १९१७ में, भड़ौच में द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलन में अध्यक्ष पद से भाषण देते समय कहा था :

" हिन्दी भाषा मैं उसे कहता हूं, जिसे उत्तर में हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या फारसी (उर्दू की) लिपि में लिखते हैं ।"[3]

उन्होंने अपने भाषण में यह भी स्पष्ट किया था कि हिन्दी तथा उर्दू दो अलग-अलग भाषाएं नहीं हैं । लिपि के बारे में उन्होंने सुझाव दिया था कि धीरे-धीरे जब हिन्दू-मुसलमानों में सन्देह-भावना नहीं रह जायेगी, तो जिस लिपि में अधिक शक्ति होगी, रह जायेगी और वही राष्ट्रीय लिपि होगी ।[4]

इस प्रकार गांधी जी हिन्दी-उर्दू को एक ही मानते थे । २० सितम्बर, १९१८ को सरोजिनी नायडू को हिन्दी में भाषण करने की प्रेरणा देते हुए उन्होंने लिखा था -

---

१ "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ० ३५४।

२ "गांधी हिन्दी दर्शन (प्र०सं०, संपा० गोपालप्रसाद व्यास, पृ० ४१८ ।

३ -वही, पृ० ४६ ।

४ -वही, पृ० ४६ ।

" प्रिय बहन ,

आपके साथ पूर्णिया जानेकी मुझे बहुत ही इच्छा होती है, क्योंकि वहां के लोग मेरी उपस्थिति चाहते हैं, परन्तु यह मेरे लिए असंभव है । फिर भी मैं आशा करता हूं कि आप ठीक ढंग से काम करेंगी और अपना भाषण हिन्दी या उर्दू- जिसे भी आप राष्ट्रभाषा कहें- में देंगी । - - - "[1]

इससे स्पष्ट है कि महात्मा जी हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा मानते थे । उनके सन् १९१९ तक के पत्रों में "हिन्दुस्तानी" शब्द का प्रयोग नहीं मिलता । फरवरी ६, १९१९ को सत्यदेव परिव्राजक के नाम लिखे पत्र में भी "हिन्दी" शब्द का ही प्रयोग हुआ है ।[2] इसके बाद जब मुसलमानों ने इस नाम के प्रति विरोध प्रकट किया तो उनको हिन्दी-उर्दू का मिला-जुला नाम "हिन्दुस्तानी" शब्द मिल गया और वे हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर तथा नागरी और फारसी दोनों लिपियों को अपनाकर अपने स्वराज्य-आंदोलन में अग्रसर हुए । ऐसा उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की दृष्टि से ही किया था । किन्तु उनका उद्देश्य पूरा न हुआ । उनकी "हिन्दुस्तानी-नीति" से जहां उनके कुछ मुसलमान दोस्त नाखुश थे, वहां उनके हिन्दी मित्र भी कम असंतुष्ट नहीं थे । सन् १९३९ ई० में पंजाब के अबोहर नामक शहर में हुए साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के बाद हिन्दी-हिन्दुस्तानी का संघर्ष और भी विकराल हो गया । हिन्दुस्तानी के समर्थन में काका कालेलकर, विनोबा जी, राजेन्द्र-बाबू आदि नेता खुलकर गांधीजी के साथ थे । किन्तु टंडन जी हिन्दुस्तानी के विरोध में डट गये । दिनांक २८-५-१९४५ से २-८-१९४५ के बीच हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर ऐतिहासिक गांधी टंडन पत्र-व्यवहार हुआ । जिस प्रकार गांधी जी हिन्दुस्तानी भाषा, नागरी और फारसी लिपि पर अटल थे उसी प्रकार टंडन जी हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि पर दृढ़ बने हुए थे । इन दोनों नेताओं का पत्र-व्यवहार "गांधी हिन्दी दर्शन" में

---

१ "गांधी हिन्दी दर्शन", पृ० २२० ।

२ -वही-, पृ० २२१-२२ ।

प्रकाशित है । गांधी जी ने जब देखा कि सम्मेलन हिन्दी-सम्बन्धी उनकी मान्यता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है, तब उन्होंने सम्मेलन से त्याग-पत्र देने का निश्चय किया और टंडन जी को लिखा :-

"- - - राष्ट्रभाषा की मेरी व्याख्या में हिन्दी और उर्दू लिपि और दोनों शैली का ज्ञान आता है । ऐसा होने से दोनों का समन्वय होने का है तो हो जाएगा । मुझे डर है कि मेरी यह बात सम्मेलन को चुभेगी । इसलिए मेरा इस्तीफा कबूल किया जाए । हिन्दुस्तानी-प्रचार का कठिन काम करते हुए मैं हिन्दी की सेवा करूंगा और उर्दू कभी की भी ।"[1]

सम्मेलन से अलग हो जाने के पूर्व गांधी जी की प्रेरणा से काका कालेलकर के नेतृत्व में वर्धा में ही सन् १९४२ ई० को हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना की गयी थी । सन् १९४६ में गांधीजी की सिफारिश से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाने अपने नाम को बदलकर "हिन्दुस्तानी प्रचार सभा" कर दिया ।[2] सन् १९४६ और ४७ के वर्ष भारत में साम्प्रदायिक द्वेष और घृणा के भयानक विस्फोट के वर्ष थे । किन्तु महात्मा जी की राष्ट्रभाषा की टेर तब भी बन्द न हुई । - १३-८-१९४७ को श्रीमन्नारायण के नाम लिखित पत्र में उन्होंने अपनी दृढ़ मान्यता दोहराते हुए कहा था :-

"- - - उर्दू कभी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती न हिन्दी । भले हिन्दी पर यूनियन की मुहर भी लगे । राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो दोनों कौम लिख सकें और बोल सकें ।"[3]

इस प्रकार भारत-विभाजन के अंत तक और उसके बाद भी गांधी जी "हिन्दुस्तानी" का समर्थन करते रहे । आखिर १४ सितम्बर १९४९ में भारतीय संविधान ने "नागरी लिपि में लिखी हिन्दी" को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया । इसके साथ ही हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी विवाद भी सदा के लिए समाप्त हो गया । केवल पत्रों में उसकी स्मृति शेष रह गई है।

---

१ "गांधी हिन्दी दर्शन", पृ० २३१ ।

२ "हिन्दी-हिन्दुस्तानी विवाद" (लेख), "दिनकर", "सम्मेलन पत्रिका", गांधी-टंडन-स्मृति-अंक, पृ० ३८ ।

३ "बापू के पत्र-बजाज-परिवार के नाम", पृ० २३७ ।

(11) व्रज भाषा और खड़ी बोली विवाद :

हिन्दी-उर्दू विवाद के समान व्रजभाषा और खड़ी बोली का विवाद भी यथेष्ट पुराना है । इस विवाद के दो पक्ष हैं- एक भाषा-विज्ञान से सम्बन्धित पक्ष और दूसरा काव्य-भाषा से सम्बन्धित पक्ष । भाषा-विज्ञान से सम्बन्धित पक्ष में खड़ी बोली की उत्पत्ति, "खड़ी" शब्द के विभिन्न अर्थ आदि के विषय में विभिन्न मत-मतान्तरों की चर्चा की जाती है और काव्य-भाषा से सम्बन्धित पक्ष में व्रजभाषा के स्थान पर काव्य में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने आन्दोलन का विवेचन होता है ।

खड़ी बोली की उत्पत्ति और नामकरण के सम्बन्ध में पूर्ववर्ती पृष्ठों में उल्लिखित आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निष्कर्ष विचारणीय हैं । इन निष्कर्षों से सिद्ध होता है कि बहुत पहले से ही खड़ी बोली में आज की हिन्दी के समान गद्य लिखा जाता था । वह व्यवहार की भाषा थी । इस विवाद के भाषा-विज्ञान से सम्बन्धित पक्ष पर पत्रों में इससे अधिक सन्दर्भ देखने में नहीं आये । किन्तु साहित्यिकों के पत्रों में इस विवाद के काव्य-भाषा से सम्बन्धित पक्ष पर अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ प्राप्त हुए हैं ।

लोकभाषा खड़ी बोली का गद्य में प्रयोग तो १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में लोगों ने स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया था, किन्तु पद्य में व्रजभाषा को ही स्थान प्राप्त था । अत: काव्य-भाषा के प्रश्न को लेकर खड़ी बोली के पक्ष और विपक्ष में वाद-विवाद या आन्दोलन हुआ इस सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा डा० शितिकण्ठ मिश्र के "खड़ी बोली का आंदोलन शीर्षक शोध-प्रबन्ध में की गयी है । यहां हम साहित्यिकों के पत्रों में इस विवाद के जो सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, उन्हीं के आधार पर इस की चर्चा करेंगे ।

खड़ी बोली के पक्ष और विपक्ष में काव्य-भाषा के प्रश्न को लेकर सर्वप्रथम विवाद भारतेन्दु-युग में खड़ा हुआ था । यह विवाद मुख्यत: राधाचरण गोस्वामी, पं० प्रतापनारायण मिश्र और पं० श्रीधर पाठक के बीच हुआ था । इस विवाद के सूत्रधार अयोध्याप्रसाद खत्री थे ।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जो साहित्यकार व्रजभाषा का विरोध कर रहे थे, वे स्वयं व्रजभाषा के अच्छे कवि थे । किन्तु वे खड़ी बोली प्रति प्रेम के कारण उसका विरोध सहन नहीं कर पाये ।

हिन्दी काव्य के माध्यम रूप में खड़ी बोली के प्रयोग की बात सबसे पहले श्री अयोध्याप्रसाद खत्री ने सन् १८८७ ई० में उठाई । श्री खत्री के विचारों का व्रज के प्रमुख साहित्यिक राधाचरण गोस्वामी ने प्रबल विरोध किया । उन्होंने "हिन्दोस्थान" के सम्पादक के नाम ११ नवम्बर १८८७ को एक पत्र भेजकर लिखा कि मैं खड़ी बोली पद्य का विरोधी हूं ।[१] श्री राधाचरण गोस्वामी के पत्र का उत्तर पं० श्रीधर पाठक ने दिया । उन्होंने २० दिसम्बर १८८७ को "हिन्दोस्थान" के सम्पादक के पास पत्र भेजकर गोस्वामी जी के पत्र की आलोचना की और खड़ी बोली का समर्थन करते हुए लिखा :

"- - - इस विविध भाषाओं के देश भारतवर्ष की कोई एक भाषा कही या मानी जा सकती है तो हिन्दी ही मानी जा सकती है और वह हिन्दी खड़ी हिन्दी है व्रजभाषा की हिन्दी नहीं ।"[२]

इन्हीं दो पत्रों से खड़ी बोली और व्रजभाषा के विस्तृत विवाद का सूत्रपात हुआ ।

पाठक जी के दिसम्बरवाले पत्र का प्रतिवाद करते हुए श्री-गोस्वामी जी ने १५ जनवरी १८८८ को "हिन्दोस्थान" में पुन: पत्र भेजा और पाठक जी ने फरवरी १८८८ को एक लम्बा पत्र "हिन्दोस्थान" के सम्पादक को लिखकर गोस्वामी जी के तर्कों का खण्डन किया । इस प्रकार पत्रों द्वारा आलोचना-प्रत्यालोचना होती रही ।

---

१ "खड़ी बोली का आन्दोलन" (सं० २०२३ वि०) परिशिष्ट-क, पृ० ३५४ ।
श्री राधाचरण गोस्वामी ने अपने पत्र में खड़ी बोली पद्य का विरोध करते हुए एक तर्क यह दिया था कि कवित्त, सवैया आदि छन्दों में खड़ी भाषा का निर्वाह नहीं हो सकता । उनकी दूसरी दलील यह थी कि चन्द के समय से हरिश्चन्द्र तक सब कविता व्रजभाषा ही में हुई है और उसका साहित्य इतना उन्नत और एक ऐसा अमूल्य रत्नभाण्डार है कि उसे छोड़कर नये कंकर पत्थर चुनना हिन्दी के लिए कुछ सौभाग्य की बात नहीं । २ -वही-, पृ० ३५८ ।

"हिन्दोस्थान" में प्रकाशित पं० राधाचरण गोस्वामी और पं० श्रीधर पाठक के प्रथम दो पत्रों से जिस विस्तृत विवाद का सूत्रपात हुआ, वह विवाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा १ सितम्बर १८८१ को - "भारतमित्र" के सम्पादक को लिखे गये पत्र से ही उठ खड़ा था । इस सम्बन्ध में डा० बलबीरसिंह ने लिखा है :-

वस्तुत: कविता में खड़ी बोली का कुछ न कुछ प्रयोग भारतेन्दु युग में ही होने लगा था । स्वयं भारतेन्दु ने १ सितम्बर १८८१ में "भारतमित्र" में अपनी खड़ी बोली की कविता के कुछ छन्द प्रकाशित कराये थे तथा अपने इस प्रयोग की सफलता-असफलता के विषय में सर्वसाधारण की सम्मति इन शब्दों में मांगी थी, "प्रचलित साधु भाषा में कुछ कविता भेजी है । देखिएगा कि इसमें क्या कसर है और किस उपाय के अवलम्बन करने से इस भाषा में काव्य सुन्दर बन सकता है । लोग विशेष इच्छा करेंगे और स्पष्ट अनुमति प्रकाश करेंगे तो मैं और भी लिखने का यत्न करूंगा ।" - - - - परन्तु तथ्य निश्चित है कि भारतेन्दु का झुकाव व्रजभाषा की ओर ही था, उनकी काव्यगत खड़ी बोली प्रयोगात्मक अवस्था की है । खड़ी बोली में काव्य-रचना उनके लिए एक विशेष कष्टसाध्य व्यापार था । उन्होंने स्वयं लिखा है, "- - - मेरा चित्त इसमें संतुष्ट न हुआ, न जाने क्यों व्रजभाषा से मुझे इसके लिखने में दूना परिश्रम हुआ"। भारतेन्दु के इन विचारों की प्रतिक्रिया के रूप में आगे चलकर वह विवाद खड़ा हो गया जिसकी ओर हमने अभी संकेत किया है ।"[1]

इससे स्पष्ट है कि साहित्यकारों के पत्रों के सन्दर्भों के बिना इस महत्वपूर्ण विवाद का सम्यक् अध्ययन हो ही नहीं सकता ।

इस विवाद की व्यापकता द्विवेदी-युग के प्रारम्भिक वर्षों में और भी बढ़ गयी । जिस प्रकार भारतेन्दु-युग में राधाचरण गोस्वामी तथा श्रीधर पाठक के बीच "हिन्दोस्थान" में साहित्यिक नोंक-झोंक हो गयी थी, उसी प्रकार द्विवेदी-युग में पं० कामताप्रसाद गुरु तथा पं० श्रीधर पाठक के बीच "प्रयाग समाचार" (१९०२ ई०) में विवाद छिड़

---

१ "हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान" (१९६४), पृ० १३१-१३२ ।

गया । डा० रामचन्द्र मिश्र ने "स्व० पं० श्रीधर पाठक से सम्बन्धित पत्र" शीर्षक लेख में इस विवाद को इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

"खड़ी बोली में तुकबन्दी करनेवाले नौसिखियों को लक्ष्यकर "प्रयाग समाचार" में श्री गुरूजी की "उद्गार" शीर्षक रचना प्रकाशित हुई-

हाय । हुई कविता तुकबन्दी ,
सड़ी हवा में सुगन्ध गन्दी ।
करो लेखनी अपनी बन्द ,
श्रीधर को सौंपो सब छन्द ।।"

कविता के नीचे गुरूजी का नाम नहीं था । पाठक जी ने उसका उत्तर "उद्गार चिकित्सा" शीर्षक के नाम से दिया था -

कविता नई निराला छन्द
दालभात में मुखरचन्द ।
लिखो, न करो लेखनि बन्द ,
श्रीधर सम कवि स्वच्छन्द ।।

गुरूजी ने इसका उत्तर "चिकित्सा की फीस" शीर्षक और इसका उत्तर पाठक जी ने "फीस की रसीद" शीर्षक रचना द्वारा दिया । आचार्य द्विवेदी के संकेतानुसार आगे चलकर यह विवाद समाप्त हो गया ।[१]"

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि "प्रयाग समाचार" में प्रकाशित यह उत्तर-प्रत्युत्तरों का सिलसिला काव्यमय होने के कारण "हिन्दोस्थान" में प्रकाशित आलोचना-प्रत्यालोचना की अपेक्षा अधिक रोचक है । द्विवेदी युग में इस प्रकार की साहित्यिक नोंक-झोंक के अनेक उदाहरण तत्कालीन पत्रिकाओं में मिलते हैं, परन्तु विस्तारभय से उनकी चर्चा हम यहां नहीं कर सकते । खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त के एक पत्र का सन्दर्भ देकर हम इस विवाद के अगले उत्थान पर प्रकाश डालेंगे ।

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही बता चुके हैं, खड़ी बोली के समर्थक साहित्यकार व्रजभाषा के सम भी अच्छे कवि रहे हैं । प्राय: सभी ने व्रजभाषा में कविता लिखी है । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी

---

१ "स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक से सम्बन्धित पत्र" (लेख), "सम्मेलन पत्रिका", पौष-ज्येष्ठ १८९१, पृ० ७० ।

सन् १९०४ ई० में सर्वप्रथम व्रजभाषा में ही कविता लिखकर "सरस्वती" में प्रकाशनार्थ भेजी थी । जब आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने वह कविता लौटा दी, तब गुप्त जी ने कार्तिक शुक्ल ३ संवत् १९६१ को आचार्य द्विवेदी के नाम एक पत्र लिख भेजा था । इस पत्र के कुछ अंश यहाँ उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत करते हैं :-

"श्रीमान् पंडितजी महाराज ,

चरणारविन्दों में बहुश: प्रणाम ।

भवदीय चरण सत पत्र प्रसादात्रं कुशलं तत्राथ्यस्तु , अग्रेवृत्तमिदं ज्ञेयम् । कृपासिंधु, करकंजांकित शिक्षापत्र २८-१०-१९०४ का प्राप्त हुआ । - - - - भगवान, इतना खेद मुझे अपनी कविता "सरस्वती" में न प्रकाशित होने का नहीं हुआ, जितना कि "सरस्वती" के पाठकों की व्रजभाषा पर तुच्छा का । जो हों अपनी २ रुचि होती है - - - - "सरस्वती" से पूर्ण प्रेम है और खड़ी बोली में यथाशक्य कविता भी रच सकता हूं । परन्तु क्या किया जाय ? खेद का विषय है कि इस दास को स्वभाव से ही खड़ी बोली से कुछ अरुचि है । - - - -[१]

परंतु यह सर्वविदित है कि खड़ी बोली के प्रति अरुचि प्रदर्शित करनेवाले मैथिलीशरण गुप्त आगे चलकर खड़ी बोली पद्य के कट्टर समर्थक और व्रजभाषा काव्य के प्रबल विरोधी बन गये थे ।

छायावाद-युग में भी व्रजभाषा-खड़ी बोली का विवाद जारी रहा । छायावाद के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने अपने "पल्लव" शीर्षक काव्य-संग्रह की भूमिका में व्रजभाषा के अनेक दोष प्रदर्शित किये । ऐसा उन्होंने क्यों किया, इसकी जानकारी हमें पं० पद्मसिंह शर्मा के - ८-४-१९३० के पत्र में मिलती है । यह पत्र उन्होंने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को लिख भेजा था । इस पत्र में पन्तजी से बिजनौर में हुई मुलाकात के सम्बन्ध में पं० शर्माजी ने लिखा है :-

"इस बार पहली बार पं० सुमित्रानन्दन पन्त से बिजनौर में मुलाकात हुई । आदमी तबीयत के साफ और "जैन्टिलमैन" मालूम हुए ।

---

१ "खड़ी बोली का आन्दोलन" (सं० २०१३ वि०), पृ० २०५-२०६ ।

"पल्लव" की भूमिका में जो ब पहले कवियों के विषय में अन्ट-शन्ट, अनाप-शनाप, ऊल-जलूल, लिख गये हैं, उसे वापस लेने को कहते थे। यह भी कहते थे कि व्रजभाषा का विरोध करने के लिए मुझे खास तौर पर कहा गया था, इसीसे वैसा लिखना पड़ा इत्यादि।"[1]

प्रस्तुत विवाद के तृतीय उत्थान पर यह पत्र पर्याप्त प्रकाश डालता है। इस काल में व्रजभाषा के समर्थन में पं० जगन्नाथ चतुर्वेदी ने "सिंहावलोकन" शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की थी। इस पुस्तक की सराहना करते हुए पं० पद्मसिंह शर्मा ने ७-४-१९२८ को चतुर्वेदी जी के नाम प्रेषित पत्र में लिखा था :

"आपका सिंहावलोकन व्रजभाषा के विरोधियों के लिए सचमुच सिंहावलोकन है, और कविता-प्रेमी रसिकों के लिए कामिनी का कमनीय कटाक्ष है।" - - - - - -"[2]

सन् १९३४ ई० में "प्रिय प्रवास" के रचयिता "हरिऔध" जी ने व्रजभाषा के प्रेमियों को मार्ग दिखाने के लिए "रस-कलस" नामक एक ग्रंथ की रचना की थी जिसका "सरस्वती" में "हरिऔध का बुढ़मस" शीर्षक लेखमाला से बहुत मज़ाक उड़ाया गया था। चूंकि पं० किशोरीदास वाजपेयी व्रजभाषा के समर्थन में "भारत" में अच्छे लेख लिख चुके थे, इसलिए कविवर "हरिऔध" जी ने १४-६-१९३४ को वाजपेयी जी के नाम पत्र भेजकर "सरस्वती" में प्रकाशित लेखमाला का प्रतिवाद करने का आग्रह किया।[3] किन्तु वाजपेयी जी अस्वस्थतावश महाकवि की इच्छा की पूर्ति न कर पाये।

सन् १९३४ ई० में ही पं० रामनरेश त्रिपाठी ने "विशालभारत" के सम्पादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को इस विवाद के सम्बन्ध में परामर्श देते हुए लिखाथा -

"व्रजभाषा का मरसिया आप अपने सिर क्यों लेते हैं ? न वह कभी जीवित थी, न अब मरेगी। तुलसीदास की अवधी के लिये तो कोई कुछ हल्ला नहीं मचा रहा है। उसी तरह व्रजभाषा भी जैसी चलती आई है वैसी चलती रहेगी।"[4]

---

१ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० ८०।
२ -वही-, पृ० १७७।
३ "आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी" (१९६५), किशोरीदास वाजपेयी,
४ "पं० रामनरेश त्रिपाठी: एक युग: एक व्यक्ति" (१९७४), पृ० ९२

इसके बाद साहित्यकारों ने ब्रजभाषा के विकास के साथ अन्य उपभाषाओं तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास की ओर भी ध्यान केन्द्रित किया । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने ब्रज के सुप्रसिद्ध - साहित्य-सेवी बाबू वृन्दावनदास के नाम लिखे अपने १२-५-१९६९ के पत्र में यही विचार प्रकट किया है । देखिए -

"प्रिय भाई वृन्दावनदास जी,

ब्रजभाषा के विषय में जो कुछ आपने लिखा है उससे मैं पूर्णतया सहमत हूं । - - - - उर्दू, अवधी, भोजपुरी तथा बुन्देलखण्डी के लिये भी हमारा मंडल भरपूर प्रयत्न करे क्योंकि ब्रजभाषा सबकी बड़ी बहन है, उर्दू की तो माता भी ।

दुई बिटिया ब्रजभाषा की है हिन्दी उर्दू सुंदर नार ।
जेठी महलन में है बैठी लुहरी बैठी जाइ बजार ।।"[१]

इस प्रकार भारतेन्दु-युग से लेकर वर्तमानयुगतक के साहित्यकारों के जो पत्र प्रकाश में आये हैं, उनमें ब्रजभाषा और खड़ी-बोली के विवाद के अनेक रोचक एवं मूल्यवान् सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं । इन सन्दर्भों के बिना इस विवाद का सम्यक् अध्ययन सम्भव नहीं है ।

(III) भाषा की अनस्थिरता-सम्बन्धी विवाद :

परिनिष्ठित हिन्दी के इतिहास में अनस्थिरता सम्बन्धी विवाद का महत्व अन्यतम है । इस विवाद का सम्बन्ध नवम्बर १९०५ की "सरस्वती" में प्रकाशित आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के "भाषा और व्याकरण" शीर्षक लेख से था । इस लेख में एक स्थान पर आचार्य द्विवेदी ने "अनस्थिरता" शब्द का प्रयोग कर दिया था । इसी शब्द को लेकर बाबू बालमुकुन्द गुप्त से उनका संघर्ष हो गया था । दोनों ओर से अनेक साहित्य-महारथी क्षेत्र में उतर आये थे । दोनों समान शक्तिवाले थे । भाषा-सम्बन्धी यह विवाद हिन्दी भाषा के इतिहास की एक घटना हो गयी । इस विवाद से सम्बन्धित साहित्यकारों के पत्रों से अनेक नये तथ्यों की जानकारी मिलती है । पत्रों के सन्दर्भों का आधार लिये बिना इस विवाद को समझना कठिन है । सर्वप्रथम हम इसकी पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालेंगे ।

---

१ "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ० ९६ ।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जब "सरस्वती" की सेवा में आये तो उन्होंने भाषा के रूप पर भी ध्यान दिया । हिन्दी में अच्छे व्याकरण का अभाव उन्हें बहुत दिनों से खटक रहता था । पं० श्रीधर पाठक के नाम २४-८-१९०५ के पत्र में उन्होंने लिखा था :-

"हिन्दी में कोई अच्छा व्याकरण नहीं जिसे सब लोग मानें । इससे जिसके जी में जो आता है उसे ही वह लिखता है । यह भाषा का दुर्भाग्य है ।"[1]

इस प्रकार एक सर्वमान्य व्याकरण बनाने की आवश्यकता की दृष्टि से उन्होंने बड़े परिश्रम से "सरस्वती" में छापने के लिए "भाषा और व्याकरण" शीर्षक लेख तैयार किया और प्रकाशित करने से पहले अपने विद्वान् मित्र पं० पद्मसिंह शर्मा की सम्मति के लिए भेजा । साथ ही १९-९-१९०५ के पत्र में पं० शर्मा जी को उक्त लेख ध्यानपूर्वक पढ़ जाने का अनुरोध करते हुए लिखा :-

"- - - जहां कहीं विशेष करके व्याकरण की बातों में कुछ अनुचित हो गया हो वहां दुरुस्त कर दीजिएगा । संकोच जरा भी न कीजिए । अपने दोष अपने को नहीं देख पड़ते, पढ़कर जितना जल्द हो सके वापस कर दीजिएगा । नवम्बर की सरस्वती में हम इसे छापना चाहते हैं, देखिएगा- पीछे से हमारी हंसी न हो ।"[2]

इस पत्र का अंतिम वाक्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है । आचार्य जी की यह देहशत भविष्य में सत्य सिद्ध हुई ।

संस्कृत के प्रकांड पंडित पद्मसिंह शर्मा ने आचार्य द्विवेदी के अनुरोध से लेख को ध्यान से पढ़ा, कई बार पढ़ा और आवश्यक संशोधन करके लौटा दिया । पं० पद्मसिंह शर्मा ने १-१०-१९०५ के पत्र में इस लेख पर अपनी सम्मति इन शब्दों में प्रकट की थी :-

"भाषा और व्याकरण को मैंने कई बार पढ़ा, ध्यान से पढ़ा । आपकी आज्ञापालन के अर्थ मैंने प्रयत्न किया कि उसमें विशेष स्थल पर कुछ अपनी सम्मति दूं । परन्तु मैंने उसकी प्रत्येक बात अपने मत के अनुकूल पाई । यही नहीं किन्तु आपके लेख का प्रत्यक्ष मुझे कुछ ऐसा

---

१ "द्विवेदी पत्रावली" (१९५४), पृ० ५९ ।

२ "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र संग्रह", भारतीय साहित्य जनवरी १९६२, पृ० ९५ ।

मोहित कर लेता है कि उसके प्रतिकूल कुछ सूझता ही नहीं । उसमें कही गई बात मुझे अपनी ही बात मालूम देने लगती है । सचमुच आपकी लेखनी में एक अपूर्व और अद्भुत शक्ति है । गालिब का यह शेर आपके ही लेखों पर चरितार्थ होता है -

"देखना तकदीर की लज्जत कि जो उसने कहा ,
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है ।"[1]

अपने विद्वान् मित्र की अनुकूल सम्मति पाकर आचार्य द्विवेदी ने ११ नवम्बर सन् १९०५ की "सरस्वती" में उक्त लेख प्रकाशित किया । इस लेख में एक सर्वमान्य व्याकरण बनने की आवश्यकता दिखाते हुए दूषित भाषा के उदाहरणों में आचार्य जी ने बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, पं० राधाचरण गोस्वामी, बाबू काशीनाथ खत्री आदि हिन्दी के सम्मान्य प्रवर्तकों एवं उन्नायकों के वाक्य उद्धृत कर उनमें व्याकरण-सम्बन्धी दोष प्रदर्शित किये थे । बाबू बालमुकुंद गुप्त को इस लेख में अभिमान की ध्वनि का आभास मिला और इसे उन्होंने हिन्दी के पूर्वाचार्यों की प्रतिष्ठा एवं स्वरूप के विपरीत माना ।[2] द्विवेदी जी अपने इस लेख में "भाषा को अनस्थिरता प्राप्त हो गई," - - -"उसकी अनस्थिरता उसे बरबाद कर रही है" आदि वाक्य भी लिख गये थे । अतएव बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने "अनस्थिरता" शब्द को पकड़कर "भारतमित्र" में आत्माराम के नाम से "भाषा की अनस्थिरता" शीर्षक लेखमाला आरम्भ की और आचार्य द्विवेदी के लेख की परिहास पूर्वक आलोचना करते हुए उनसे "अनस्थिरता" शब्द सिद्ध करने को कहा गया । इस सिलसिले में काफी वाद-विवाद चला और अनेक लेखकों ने भाग लिया । हिन्दी साहित्यकों के प्रकाशित पत्रों में इसके विस्तृत सन्दर्भ मिलते हैं । कुछ प्रमुख सन्दर्भों का यहां हम अवलोकन करेंगे ।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को जब "भाषा की अनस्थिरता" शीर्षक आलोचनात्मक लेख प्राप्त हुआ तो उसे पढ़कर उन्होंने पं० पद्मसिंह शर्मा को ८-१२-१९०५ के पत्र में लिखा :-

---

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० ८८ ।
२ "बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ" (१९५०), पृ० १२९ ।

"- - - २ ता० (दिसम्बर) के भारत मित्र में आत्माराम की आड़ में सम्पादक ने "भाषा और व्याकरण" पर जल्पना बहुल और कटूक्तिपूर्ण आक्रमण किया है, उस पर क्या हम पर आक्रमण है। लेख मसखरेपन से भरा हुआ है। अभी शायद एक आध आक्रमण हों, व्याकरणाच्युत वाक्यों के उदाहरणों में भारतमित्र के भी दो एक वाक्य थे-इससे और अन्य कारणों से भी यह हमला हुआ है। - - -[1]

आचार्य द्विवेदी ने स्वयं "कल्लू अल्हइत" के नाम से गुप्त जी की लेखमाला के जवाब में, उन्हीं की शैली में "सरगौ नरक ठेकाना नाहिं" नामक आल्हा लिखा जो जनवरी सन् १९०६ की "सरस्वती" में प्रकाशित हुआ था। इस आल्हा की शैली से प्रभावित होकर पं० पद्मसिंह शर्मा ने अपने ३०-१-१९०६ के पत्र में द्विवेदी जी को लिखा था :-

"- - - सरगौ नरक ठेकाना नाहीं" में कल्लू के रूप में शायद गुप्ता साहब ह अपना कच्चा चिट्ठा सुना रहे हैं। क्योंकि "झंझराखेश बनियइ" "दीनदयाल" आदि शब्द उनकी तरफ ही इशारा कर रहे हैं।"[2]

पं० पद्मसिंह शर्मा और काशी के अन्य कुछ पंडितों ने "अनस्थिरता" को संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध साबित करने का प्रयास किया था। परंतु द्विवेदी जी मानते थे कि हिन्दी की सजीवता का आधार संस्कृत और प्राकृत नहीं हैं। इसलिए उन्होंने १७-१२-१९०५ के पत्र में पं० पद्मसिंह शर्मा को लिखा -

" अनस्थिरता को आप संस्कृत क्यों कहते हैं। जैसे अनपढ़, अनगिनत आदि शब्द हैं वैसे ही उसे भी रखने में क्या हानि है।"[3]

"भारतीय साहित्य" में प्रकाशित आचार्य द्विवेदी के पत्रों से ज्ञात होता है कि इस विवाद में व्याकरणाचार्य पं० गिरधर शर्मा तथा पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने गुप्त जी का समर्थन किया था।[4]

---

१ "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र संग्रह," भारतीय साहित्य, जुलाई-अक्टू० १९६२, पृ० १५९।

२ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० १०१।

३ "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह" भारतीय साहित्य, जुलाई १९६१, पृ० १८२।

४ -वही-, पृ० १९८।

इस प्रकार "भाषा की अनस्थिरता" विवाद को लेकर हिन्दी-क्षेत्र में एक तुमुल संग्राम-सा दृश्य उपस्थित हो गया था । जब ब्राह्मण द्विवेदी जी वैश्य गुप्त जी से दबने लगते तो पं० गोविन्द नारायण मिश्र ने अपनी कलम उठायी और "पं० शिवदत्त कविरत्न" के नाम से "हिन्दी बंगवासी" में "आत्माराम की टें टें" शीर्षक से लेखमाला का आरम्भ किया । द्विवेदी जी के मत की पुष्टि के लिए उन्होंने "अनहोनी", अनरीति" आदि की भाँति "अनस्थिरता" शब्द के प्रयोग को उचित ठहराने का प्रयास किया । पं० गोविन्दनारायण मिश्र की प्रत्यालोचना से गुप्त जी को चुप रहना पड़ा। आचार्य द्विवेदी ने पं० गोविन्दनारायण मिश्र के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपने १३-३-१९०६ के पत्र में लिखा :

"- - - आत्माराम के प्रलापों से हम खिन्न नहीं । हमारी खिन्नता का कारण समझदार लेखकों का मौनावलम्बन है । - - - आपके लेख ने बड़ा काम किया । देहात तक में उसकी धूम है । यहाँ कई जगह "बंगवासी" आता है । लोग उसे बड़े चाव से पढ़ते हैं और आपके लेख की प्रशंसा करते हैं । जब नीरस और मूर्खप्राय ग्रामीणों की यह दशा है तब औरों का तो क्या कहना ? आपके लेख ने आपका उद्देश्य पूर्ण कर दिया । और हम क्या विनय करें- कृपा बनाये रखिए, अपने आशीर्वाद का पात्र हमें समझते रहिए यही प्रार्थना है ।"[१]

इस प्रकार हिन्दी के विकास की दृष्टि से यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विवाद था । डा० रामविलास शर्मा ने इस विवाद की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-"वाद-विवाद के दौरान थोड़ा-बहुत कीचड़ भी उछाला गया, साड़ी और लहंगे की बातें हुईं, पर कुल मिलाकर यह बहस लाभदायक थी । हिन्दी को परिनिष्ठित रूप देना एक ऐतिहासिक आवश्यकता को पूरा करना था । वह आवश्यकता इस रूप में पूरी हुई कि हिन्दी लेखक अपनी भाषा के प्रति अधिक सतर्क रहने लगे ।"[२] इस दृष्टि से यह विवाद हिन्दी-साहित्य के इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना है ।

---

१ "आचार्य के ऐतिहासिक पत्र" (लेख), लक्ष्मीशंकर व्यास, "भाषा", द्विवेदी-स्मृति-अंक, १९६४, पृ० १६२ ।

२ "महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण" (१९७७), पृ० २६९ ।

(iv) विभक्ति-विवाद :

"भाषा की अनस्थिरता" सम्बन्धी विवाद के कई वर्ष पश्चात् पराड़कर जी के गुरु तथा मामा पंडित सखाराम गणेश देउस्कर ने विभक्ति का विवाद छेड़ा । इस विवाद की विस्तार से चर्चा पं० लक्ष्मीशंकर व्यास ने "पराड़कर जी और पत्रिकारिता" शीर्षक पुस्तक में की है । उनके मतानुसार पं० सखाराम गणेश देउस्कर ने आचार्य पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी से पूछा था कि बंगला, मराठी आदि भाषाओं में तो शब्द के साथ विभक्ति मिलाकर लिखी जाती है, पर हिन्दी में क्यों अलग लिखी जाती है । इस पर द्विवेदी जी मौन रहे ।[1] बाद में समाचार-पत्रों में इस पर बड़ा आन्दोलन खड़ा हुआ ।

हिन्दी के कुछ साहित्यकारों ने अपने मित्रों के नाम लिखे पत्रों में भी इस विवाद के पक्ष-विपक्ष में अपना मन व्यक्त किया था ।उदाहरण के लिए पं० पद्मसिंह शर्मा द्वारा २-७-१९२९ को लिखा गया श्री - पारसनाथ सिंह के नाम पत्र को देखा जा सकता है । इस पत्र में पं० शर्मा जी ने इस विवाद के विषय में अपना मंतव्य प्रकट करते हुए लिखा था :-

"मैं सटाऊ- सिद्धान्त का माननेवाला हूं, पर एकान्त भक्त नहीं । पर यही ठीक है कि विभक्ति मिलाकर छपाया जाय । इसी में लाभ है । यही नियम रहना चाहिए ।"[2]

इस विवाद के सम्बन्ध में भी पं० गोविन्द नारायण मिश्र के लेखों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी । "हितवार्ता" में प्रकाशित उनकी लेखमालाओं से हिन्दी-भाषा के शास्त्रीयरूप को नया मानदण्ड प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार हिन्दी पत्र-साहित्य में भाषा-सम्बन्धी वाद-विवादों के अनेक उपयोगी सन्दर्भ-सूत्र उपलब्ध होते हैं । इन सन्दर्भ-सूत्रों की सहायता से इन विवादों का अध्ययन सरल, स्वाभाविक और रोचक बन जाता है ।

---

१ "पराड़कर जी और पत्रकारिता" (१९६०), पृ० १६२ ।
२ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० १६ ।

(आ) प्रवृत्ति और नीति-विषायक आन्दोलन :

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास विविध विवादों एवं आन्दोलनों का इतिहास कहा जा सकता है । आधुनिक युग के आरंभ से ही भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अनेक विवाद और आन्दोलन होते रहे हैं । भाषा-सम्बन्धी प्रमुख विवादों की चर्चा के बाद अब यहां हम पत्रों में प्राप्त सन्दर्भों के आधार पर प्रवृत्ति और नीति-विषायक मुख्य आन्दोलनों का अध्ययन करेंगे ।

(1) छायावादी आन्दोलन :

हिन्दी साहित्य के इतिहास में बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक से एक नये काव्य-आन्दोलन का प्रवर्तन हुआ जिसके अग्रणी जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा - ये चारों कवि थे । इस आन्दोलन को "छायावादी-काव्य" की संज्ञा से अभिहित किया गया । यह आन्दोलन मूलभूत प्रवृत्तियों एवं बाह्य रूप-रंगों की दृष्टि से परम्परागत काव्य-धाराओं से इतना भिन्न था कि एकाएक इसे स्वीकार किया न जा सका । पूर्व प्रतिष्ठित आलोचकों तथा साहित्यकारों ने इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखकर इसका खूब विरोध किया ।

"छायावाद" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रकाश्य रूप से "श्रीशारदा (जबलपुर) में सन् १९२० ई० में कविवर मुकुटधर पाण्डेय ने किया था । इस आन्दोलन के कई वर्ष बाद इसका पुनर्मूल्यांकन करने के लिए छायावाद के प्रसिद्ध आलोचक श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने पाण्डेय जी के पास एक पत्र भेजकर "यह शब्द कहां से आया ? इसका उद्भावक कौन है ?" आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया था । द्विवेदी जी के पत्र के उत्तर में पं० मुकुटधर पाण्डेय ने ३१-१-१९६६ को प्रयाग से जो पत्र लिख भेजा था, वह इस आन्दोलन के स्वरूप पर यथेष्ट प्रकाश डालता है । अत: इस पत्र के कुछ अंश यहां हम उद्धृत करते हैं :-

"- - - आपके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मुझे लगभग पचास वर्ष पूर्व की विस्मृत-सी-बात का स्मरण करने का प्रयास करना पड़ेगा । मैंने "छायावाद" का प्रयोग मिस्टिसिज्म के लिए किया था । मिस्टिसिज्म के पर्यायवाची शब्द के सम्बन्ध में मैंने पूज्य द्विवेदी तथा

बख्शी जी से पूछा था । उन्होंने क्रम से "अध्यात्मवाद" और "भक्तिवाद" शब्द सुझाये थे, पर वस्तुस्थिति के विचार से वे मुझे कुछ जंचे नहीं । मेरे सामने रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित नई शैली थी । मैंने इस शैली का बहुत कुछ अध्ययन किया था । इस उस पर कुछ आलोचना भी पढ़ी थी।- - मेरी समझ में नई शैली में भाव नहीं, भावों की छाया पाई जाती थी जिन्हें पकड़कर हृदयगंम करने में पाठकों को कठिनाई होती थी । छाया-वादिता से ही मैंने "छायावाद" शब्द बनाया था । पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि मिस्टिसिज्म के लिए छायावाद का प्रयोग बंगला में नहीं किया जाता था । कदाचित् अब भी नहीं किया जाता । "छायावाद" से मेरा अभिप्राय मिस्टिसिज्म के विषय-वस्तु से कहीं अधिक अभिव्यक्त की प्रणाली या शैली से था ।"[१]

इससे स्पष्ट होता है कि "छायावाद" हिन्दी के लिए एक नयी शैली थी । अत: प्रारम्भ में इसका उग्र विरोध किया गया । इसे निस्सार कल्पना, वाग्जाल, मिथ्यानुभूति, रहस्यवाद का पर्याय आदि समझकर इसका उपहास भी किया गया । "सुधा" के दिसम्बर १९२७ के अंक में "छायावाद" के साथ "मायावाद" का प्रास मिलाकर एक परिहासपूर्ण कविता प्रकाशित की गयी ।[२] अन्य पत्रिकाओं में भी इसका मजाक उड़ाया गया ।

---

१ "छायावाद : पुनर्मूल्यांकन" (लेख), शांतिप्रिय द्विवेदी, "सरस्वती", फरवरी १९६६, पृ० १६० ।

२ "छायावाद चलाया किसने है किसकी यह माया ।
हिन्दी भाषा में यह न्यारा शब्द कहां से आया ।।
कविता जो न समझ में आयी, कहकर "छायावादी" ।
बुद्धूमियां व्यंग्य करने के हुए हाय अब आदी ।।
"मिस्टिसिज्म" का नाम मारकर हो उसके प्रतिपक्षी ।
"छायावाद" उसे बतलाते हैं साहित्यिक पक्षी ।।
कोई पूछ नहीं रहा है, क्या है छायावाद ।
सांख्यिक मायावाद है या कोरा अपवाद ।।
बाबा किस पेटेण्ट मिंट से हुआ वर्ड यह क्वायन ।
इसका पता न चलता है कुछ छाने बेद रसायन ।"
- उद्धृत "स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन" (१९६५) डा० शिवकरणसिंह, पृ० ५२ ।

पूर्व प्रतिष्ठित आलोचकों तथा साहित्यकों ने भी छायावाद पर अस्पष्टता और दुरूहता का आरोप लगाया । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "आजकल के छायावादी कवि और कविता" नामक निबन्ध में लिखा था कि "छायावादियों की रचना तो कभी-कभी समझ में भी नहीं आती ।"[1]

आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा ने श्री पारसनाथसिंह के नाम चैत्र सुदि ८-११८५ को लिखे पत्र में छायावादी आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखा था ।

"- - - छायावाद और प्रकाशवाद पर जो लिखा-पढ़ी हो है, मैं उसे यों ही कभी-कभी सरसरी तौर पर पढ़ लेता हूं । दिलचस्पी से नहीं । मैं न छायावाद का विरोधी हूं न खड़ी बोली का । पर दुर्भाग्य से छायावाद के नाम से जो कुछ आजकल निकल रहा है, वह मेरी समझ से बाहर है । अज्ञेय मीमांसा है । इसलिए मजबूर हूं । दाद नहीं दे सकता । समझूं तो दाद दूं । छायावाद के रहस्य पर आप कुछ प्रकाश डालिए तो शायद कुछ तत्व समझ में आ जाए ।"[2]

इससे स्पष्ट होता है कि पं० पद्मसिंह शर्मा छायावाद के विरोधी नहीं थे तो उसके प्रशंसक भी नहीं थे । सूडो-छायावादियों (नाम-मात्र के छायावादियों) से तो उनका यदा-कदा संघर्ष भी हुआ करता था इस सन्दर्भ में उनके नाम लिखित पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के ४-७-१९२८ के पत्र का निम्नांकित अंश द्रष्टव्य है :-

"सूडो-छायावादियों (नाम मात्र के छायावादियों) से आपने जो लड़ाई छेड़ दी है, उसमें मैं आपके साथ ही रहूंगा ।"[3]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा दिनांक ६-१-१९२९ को निराला जी के नाम लिखित पत्र से ज्ञात होता है कि उन दिनों छाया-वादी आन्दोलन को लेकर हिन्दी साहित्यकों के दो दल हो गये थे - एकनया दल और दूसरा पुराना दल । आचार्य वाजपेयी ने अपने इस पत्र में

---

१ "आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व" (१९७७), डा० शैव्या भगा, पृ० १९२ ।

२ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० ६ ।

३ "स्व० पद्मसिंह शर्मा का पत्र संग्रह", भारतीय साहित्य, वर्ष-१४, अंक १-२, पृ० २२६ ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर अगले महीने आयोजित होनेवाले नये-पुराने दलों के वाद-विवाद-सम्बन्धी कार्यक्रम की सूचना भी दी है । यथा :-

"- - - प्रसाद जी कहते थे कि फरवरी में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से नये-पुराने दलों का वाद-विवाद कराने का निश्चय कराया गया है । उनको नये दल को संघटित करने और उसका स्पाकमैन बनने को कहाम गया है । वे तो लिखित रीति से ही अपना वक्तव्य प्रकाशित करेंगे, पर वाद-विवाद के लिए आपकी उपस्थिति की बड़ी आवश्यकता है । प्रसाद जी ने सम्भवत: आपको इस सम्बन्ध में लिखा भी होगा, मुझसे कहते थे कि यदि नागरी प्रचारिणी सभा बुलाये तो तो बुलाये नहीं तो मैं तो उन्हें अवश्य बुलाऊँगा । वास्तव में यह एक Epoch- Marking घटना होगी-हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नई बात ।"[1]

इस घटना के बाद भी छायावाद का बराबर विरोध होता रहा । सन् १९३३ के "सुकवि" में रीतिवादी दृष्टि से छायावादी काव्य-शैली की भर्त्सना "हिन्दी कविता में छायावाद" शीर्षक लेख में की गयी थी । "सुकवि" के सम्पादक "सनेही" जी ने "निराला" जी के नाम एक पत्र लिखकर उक्त लेख पर टिप्पणी करने को कहा था । अत: "निराला" जी ने ३-११-१९३३ के पत्र में छायावाद के विरोधियों पर इन शब्दों में प्रहार किया :

"आदरणीय सनेही जी ,

छायावाद पर एक लेख "सुकवि" में देखा । ऐसे अन्ट-सन्ट लेख से आपके सुकवियों को कुछ लाभ होगा, मेरे अनुमान से बाहर है । उत्तर के लिये मेरे पास समय कम है, पुन:, गधा घोड़ा नहीं बन सकता यह प्रसिद्धि आप भी जानते हैं । ऐसी हालत में लिखने से क्या फ़ायदा होगा ? मुक्त छन्द की मुक्ता का महत्व नराकार वानरमहाशय क्या समझेंगे ? उन्हें तो समावर्त केले ही प्रसन्न कर सकते हैं । "हिन्दी कविता में छायावाद" का उत्तर इससे अधिक नहीं लिख सकता । छापें न छापे, आपकी इच्छा ।"[2]

---

१ "नन्ददुलारे वाजपेयी के पत्र-निराला के नाम", भारतीय साहित्य, वर्ष-१४, अंक- ३,४, पृ० १८२-१८३ ।

२ "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), पृ० २७१ ।

"निराला" जी के उपर्युक्त पत्र को पढ़कर श्री रामकिशोर स शर्मा का यह कथन सार्थक प्रतीत होता है कि - "छायावादी कवियों पर कल्पना-विहार एवं स्वप्निलता के आक्षेप का परिहार निराला जिस शक्तिमत्ता से करते हैं, कदाचित युग का कोई कवि नहीं करता ।"[1]

छायावादी आन्दोलन में किस-किस ने विरोध और समर्थन किया, इसका ब्योरेवार विवरण हमें निराला जी के निम्नलिखित पत्रांश में प्राप्त होता है -

"पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी का दल विरोध में था । ल-लखनऊ के मृत्युंजय औषधालय के पं० शालिग्राम शास्त्री जी ने विरोध किया था । डा० अवध उपाध्याय, प्रो० गुलाबराय एम०ए० प्रो० कृष्ण-देव प्रसाद गौड़ एम०ए० ने समर्थन किया । यह चढ़ाई और लड़ाई छायावाद के नाम से हुई । - - - हिन्दी के बीस साल के इतिहास में छायावाद और रहस्यवाद के विरोध और अनुकूल में हजारों सफे रंगे गए हैं और उस समय जितने बड़े आचार्य थे, मिश्र बन्धुओं को छोड़कर, प्राय: सभी तीव्र विरोधी थे । बनारसीदास चतुर्वेदी अपने पत्र की प्रसिद्धि के लिए यद्यपि एक-एक विरोधी चुने रहते थे, फिर भी उन्होंने मेरे सम्बन्ध में कुछ देर की और बड़ी समझ से काम लिया ।"[2]

इस प्रकार हिन्दी साहित्यकों के पत्रों में छायावादी आन्दोलन के बीस वर्ष का इतिहास प्रत्यक्ष हो जाता है ।

(II) घासलेटी-साहित्य-विरोधी आन्दोलन :

हिन्दी साहित्य में छायावादी आन्दोलन के अतिरिक्त अन्य जो उल्लेखनीय आन्दोलन हुए हैं, उनमें से अधिकतर आन्दोलनों के प्रवर्तक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी रहे हैं । कदाचित् इसीलिए पं० सूर्यनारायण व्यास ने उनको "आन्दोलनों के आचार्य और प्रचार में प्राचार्य" कहा है[3] । घासलेटी-साहित्य विरोधी आन्दोलन भी उन्होंने ही छेड़ा था ।

१ "युग कवि निराला" (१९७०), संपा० गिरिराज शरण अग्रवाल, पृ० ११७
२ "निराला की साहित्य-साधना - ३" (१९७६), पृ० ३९६ ।
३ "प्रेरक साधक (१९७०), पृ० ५६ ।

कुछ लोग मानते हैं कि पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने यह आन्दोलन "उग्र" जी की "चाकलेट" शीर्षक पुस्तक को लेकर चलाया था । इसलिए इसे "चाकलेट-घासलेट विवाद" भी कहा गया है ।[1] परन्तु पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने मोहनसिंह सेंगर के नाम एक पत्र में लिखा है कि -

"- - - आप अपने उस भ्रम को कृपाकर दूर करदें कि घासलेट विरोधी आन्दोलन मुख्यतया चाकलेट के ही विरुद्ध था ।"[2]

घासलेट-विरोधी आन्दोलन भले ही "चाकलेट" के विरुद्ध न था, किन्तु इसमें "उग्र" जी प्रमुख निशाना थे । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने "उग्र" जी की "चाकलेट" शीर्षक पुस्तक महात्मा गांधी को सम्मत्यार्थ भेजी थी । उसके साथ छोटा-सा नोट भी था । महात्मा जी ने नोट छपने दे दिया । तत्पश्चात् पुस्तक को पढ़ा । उन्हें वह पुस्तक आपत्तिजनक नहीं जंची और इस आशय का एक पत्र भी उन्होंने चतुर्वेदी जी को भेजा । इससे चतुर्वेदी जी द्वारा उठाये गये घासलेट-विरोधी आन्दोलन का उलटा असर होने लगा । इस बात की ओर संकेत करते हुए पं० पद्मसिंह शर्मा ने अपने २१-१-१९२८ के पत्र में चतुर्वेदी जी को लिखा :

"आपके घासलेट-आन्दोलन का परिणाम तो उलटा हो रहा है । बड़े-बड़े महात्मा घासलेटी का समर्थन कर रहे हैं । जैसा कि उग्रजी ने "चैलेन्ज" किया है, क्या सचमुच महात्मा जी के वैसे ही विचार हैं ? फिर आप क्यों व्यर्थ में वैर विसाह रहे हैं । यह तो घासलेटी साहित्य का अच्छा-खासा नोटिस हो रहा है लोकरुचि ही जब वैसी हो रही है, तो इसका उपाय क्या ? आप किस-किस से लड़ेंगे ?"[3]

इसके बावजूद भी चतुर्वेदी जी ने आन्दोलन जारी रखा और "विशालभारत" में इस पर बराबर लिखते-लिखवाते रहे । अपने ४-७-१९२८ के पत्र में उन्होंने पं० पद्मसिंह शर्मा से अनुरोध किया -

---

१ "हिन्दी साहित्य-सेवी और उनके पत्र" (लेख), क्षचादेवी, मनीषा, संवत् २०२५-२६, पृ० ६६ ।

२ "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ० ५१६ ।

३ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० ६५ ।

"- - - आप जहां कहीं जावें इस घासलेटी साहित्य की जी खोल कर बुराई करें । चाहे कोई भला माने या बुरा । सब लोगों को प्रिय बने रहने का सिद्धान्त गलत है । नियंत्रण या शासन करने वालों को दस भला कहते हैं तो दस बुरा भी । गन्दगी फैलाने वालों की गालियां इस बात का प्रमाण है कि गोली ठिकाने पर जाकर लगी है । मेरा तो अगले सम्मेलन तक का प्रोग्राम ही घासलेटी साहित्यवालों से संग्राम करना ही है ।"[1]

चतुर्वेदीजी ने "उग्र" जी को भी पत्र लिखकर "विशालभारत" में अपने विचार प्रकट करने का निमंत्रण दिया था । इस सम्बन्ध में "उग्र" जी के नाम लिखे उनके २८-८-१९२८ के पत्र का यह अंश द्रष्टव्य है -

"- - - यदि कोई अनुचित बात मेरी ओर से हो तो तुरन्त उसका विरोध कीजिए । "विशाल भारत" के कालम उसके लिए खुले रहेंगे । मेरा विचार है आप अपने पक्ष का समर्थन "विशाल भारत" में ही करें । फिर जैसी आपकी मर्जी ।"[2]

जब यह आन्दोलन तीव्र हो गया तो श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा ने "उग्र" जी को अपने २४-१०-१९२८ के पत्र में यह विवाद सुलह के साथ समाप्त करने की इच्छा प्रकट करते हुए लिखा :

"- - - आपके "चाकलेट" साहित्य पर इधर कुछ वाद-विवाद छेड़ा गया है - "विशाल भारत" तो देखते ही होंगे । शायद तुमने अभी तक कुछ उत्तर नहीं दिया है । जहां तक हो, यह Controversy सुलह के साथ समाप्त हो जानी चाहिए ।"[3]

यह आन्दोलन कैसे और कब समाप्त हुआ, इसका संकेत पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने मोहनसिंह सेंगर को लिखे पत्र में किया है ।

"उग्र" जी की "चाकलेट" शीर्षक पुस्तक पढ़कर महात्मा गांधी ने पं० चतुर्वेदी जी को जो पत्र भेजा था वह उन्होंने महात्मा जी के इस आदेश पर कि - "आपने बहुत अच्छा किया कि कलकत्ता से अहमदाबाद चले आये । यदि मैं अपनी सम्मति छाप देता तो बड़ा अहित हो जाता ," उस

---

१ "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र संग्रह", भारतीय साहित्य, वर्ष-१४, अंक १-२, पृ० २२७ ।

२ "फाइल और प्रोफाइल" (१९७०), पृ० २२२ ।

३ -वही-, पृ० ३३७-३३८ ।

समय प्रकाशित न कर लगभग २० वर्ष बाद "हिन्दुस्तान" (२ अक्टूबर, १९५१) में स्पष्टीकरण सहित प्रकाशित कराया ।[1] इस पर मोहनसिंह सेंगर ने "नया समाज" (जुलाई १९५२) में "एक साहित्यिक अनर्थ" शीर्षक से एक टिप्पणी प्रकाशित की जिसके उत्तर में चतुर्वेदी जी ने सेंगर जी को लिखा :

" - - - मेरे कर्म में संदिग्ध कुछ भी नहीं था । मेरे दृष्टिकोण से जो विरुद्ध थे, उन्हें अपनी बात कहने का मौका मैंने बराबर दिया । - - - आन्दोलन दो से ज्यादा वर्षों तक चलता रहा और उसकी समाप्ति गोरखपुर साहित्य सम्मेलन के उस प्रस्ताव से हुई, जो मेरे पक्ष और घासलेट-साहित्य के विपक्ष में था ।[2] - - -

इस पत्र के अंत में चतुर्वेदी जी की यह आत्म-स्वीकृति द्रष्टव्य है- "मुझ से सैकड़ों भूलें - नहीं भयानक भूलें - बन पड़ी हैं, लेकिन मैं उन्हें छिपाऊंगा नहीं ।"[3]

इस प्रकार पत्रों के द्वारा इस आन्दोलन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है और अनेक भ्रांतियों का निराकरण हो जाता है ।

(III) वर्तमान-धर्म-विवाद:

वर्तमान-धर्म-विवाद भी हिन्दी साहित्य में अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है । यह विवाद भी पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने उठाया था । इस विवाद के द्वारा "निराला" जी का ऐतिहासिक घेराव किया गया था ।

"निराला" जी का एक लेख "भारत" में "वर्तमान धर्म" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था । इस लेख को लेकर चतुर्वेदी जी ने "विशाल भारत" में "साहित्यिक सन्निपात" शीर्षक एक लेख प्रकाशित किया और उस पर हिन्दी के हितैषी विद्वानों की सम्मतियां मांगी । ~~लेख~~ लेख प्रकाशित करने से पहले चतुर्वेदी जी ने उसका प्रूफ निराला जी को भेजा था जिसे पढ़कर निराला जी ने लिखा था :-

---

१ "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ० ५१५ ।

२ -वही- पृ० ५१६ ।

३ -वही-, पृ० ५१७ ।

"प्रिय चतुर्वेदी जी ,

आपका प्रूफ मिला । आपने अपने मनोभाव बहुत अच्छीतरह आकर्षक ढंग से प्रकट किये हैं । देखूं कैसी कैसी सम्मतियां हिन्दी के हितैषी विद्वानों से आपको मिलती है । - - - आपने आक्रमण का प्रूफ भेजा, यदि चाहते तो प्रबन्ध की टीका करने का निमंत्रण भी दे सकते थे, तब इतना आकर्षक कुछ जरूर न रहता पर गुत्थी सुलझ जाती । मुमकिन है अन्त तक आप ही बदनाम हों । सच बतलाइयेगा, बिना कोष देखे, पूछे, सन्निपात की व्युत्पत्ति जानते हैं आप ? यह पत्र भी छापिये ।"[1]

किन्तु यह पत्र "विशालभारत" में नहीं छपा, "वर्तमान धर्म" की टीका वाले लेख के साथ "माधुरी" में छपा था ।[2]

निराला जी द्वारा डा० रामविलास शर्मा को लिखे गये पत्र से ज्ञात होता है कि जिस "वर्तमान धर्म" शीर्षक "भारत" में छपे लेख को लेकर चतुर्वेदी जी ने आन्दोलन उठाया था, उस पर राय देनेवालों में कि लेखक पागल है, पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी और प्रो० रामदास गौड़ भी थे । पं० मोहनलाल महतो "वियोगी" भी पं० बनारसीदास जी के सहयोगियों में थे । - - - पं० नन्ददुलारे जी वाजपेयी ने जो उस समय अर्द्ध-साप्ताहिक "भारत" के सम्पादक थे, इस लेख की विरोधिता का अपने पत्र में सम्पादक की जिम्मेदारी के रूप में सुन्दर उत्तर लिखा था । जिन पत्रों ने "विशाल भारत" के इस आन्दोलन का समर्थन किया था, उनमें एक "प्रताप" भी है ।[3]

यद्यपि निराला जी ने इस विवाद में डटकर अपने पक्ष का समर्थन किया, किन्तु अपने पर चारों ओर से हो रहे प्रहारों से वे क्षुब्ध हो उठे । उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं थी । जब मुंशी अजमेरी को निराला जी की दु:खदस्थिति का पता चला तो उन्होंने चतुर्वेदी के पास पत्र भेजकर "वर्तमान धर्म-विवाद" को समाप्त कर देने की प्रार्थना की । मुंशी अजमेरी के २६-११-१९३२ के पत्र का एक अंश यहां दिया जाता है :-

"- - - मुझे श्री दुलारेलाल जी से मालूम हुआ कि निरालाजी

---

१ "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), पृ० २६८ ।

२ -वही, सम्पादक की टिप्पणी ।

३ -वही, पृ० ३९७ ।

आजकल बहुत दु:खी है । हाथ तंग है और उनकी एक मात्र कन्या बहुत बीमार है । इत्यादि । यही बातें यहां शांतिप्रिय जी ने सुनाईं । ऐसे दु:खी मनुष्य पर इस समय चारों ओर से साहित्यिक वार भी हो रहे हैं । तब उसका मस्तिष्क कैसे ठीक रह सकता है । - - - उनकी दशा देखकर मेरा हृदय द्रवित हो गया और श्री शान्तिप्रिय जी ने तथा श्रीमान राय-साहब ने भी मुझ से कहा, इसलिए मैंने यह बड़ा पत्र आपको लिखा है जो इस पत्र के साथ है । अब कृपा करके इस झगड़े को समाप्त कर दीजिए ।-- बस, अब यह झगड़ा बन्द ही हो जाना चाहिए । बहुत हो गया और निराला जी तथा नन्द दुलारे जी की दोनों की खूब छीछालेदार हो गई । श्री राय साहब तो मजाक के टोन में कहते हैं कि एक ब्राह्मण की रोटी तो ले ली अब क्या किसी की जान लीजिएगा ।"[१]

इस प्रकार उपर्युक्त पत्रांश में इस ऐतिहासिक आन्दोलन की समाप्ति का संकेत मिलता है । नि:सन्देह ही यह विवाद हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक दु:खद घटना थी ।

(iv) "कस्मै देवाय" आन्दोलन :

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने मार्च १९३४ के "विशाल भारत" में एक लेख प्रकाशित किया था जिसका शीर्षक था -" कस्मै देवाय ।" इस लेख ने उन दिनों एक छोटा-सा आन्दोलन खड़ा कर दिया था ।

"कस्मै देवाय हविषा विधेम" अर्थात् हम किस देवता के लिए हवन-होम करें ? यह ऋग्वेद का एक मंत्र है । इसके प्रारम्भिक शब्दों को अपने लेख के शीर्षक के रूप में प्रयुक्त कर चतुर्वेदी जी ने प्रश्न उठाया था- "हम किसके लिए साहित्य उत्पन्न करें ?"

इस लेख को पढ़कर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी बहुत प्रभावित हुए थे । अपने ९-४-१९३४ के पत्र में उक्त लेख पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने चतुर्वेदी जी को लिखा था :-

"- - - लेख क्या है, बम का गोला है । उसके प्रथमांश से बहुत से लोग नाराज होंगे, पर बातें हैं सच्ची ।मैं आपके विचारों से सर्वथा

१ "स्वर्गीय मुंशी अजमेरी के पत्र", सम्मेलन पत्रिका, पौष-ज्येष्ठ, १८८७ शक, पृ० ४५ ।

सहमत हूं । परन्तु मुझे अपनी तारीफ सुनकर बहुत संकोच हुआ । अरे भाई, मैं उस तारीफ का मुस्तहक नहीं ।"[1]

इस प्रकार इस आन्दोलन का सम्बन्ध किसी व्यक्ति-विशेष से न होकर साहित्य के व्यापक उद्देश्य से था । इसमें उस समूचे वर्ग की कड़ी आलोचना की गयी थी, जो सस्ता, मनोरंजन और विलासी साहित्य उत्पन्न कर समाज में विकृति पैदा करता है । अत: यह एक नीति-विषयक आन्दोलन है ।

(V) दुलारे - दोहावली - दंगल :

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने "विशाल भारत" के सम्पादन-काल में जो आंदोलन चलाये, उनमें दुलारे-दोहावली-दंगल एक अनूठा आन्दोलन था ।

"दुलारे दोहावली" सुधा के तत्कालीन सम्पादक दुलारेलाल भार्गव की एक बहुचर्चित कृति है । भार्गव जी ने उसे देव-पुरस्कार के लिए भेजा था । जब देव-पुरस्कार के निर्णायक उक्त कृति पर विचार कर रहे थे, उसी समय विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में दोहावली को लेकर दंगल मच गया । इस आंदोलन का सूत्रपात्र "विशाल भारत" में प्रकाशित पं० श्री शालिग्राम शास्त्री के "सन् १९३४ का बौड़मथन" शीर्षक लेख से हुआ । "दुलारे दोहावली" पर मुंशी अजमेरी ने जो व्यंग्यात्मक सम्मति दी थी, उसे उक्त लेख में विकृत रूप देकर दोहावली की कड़ी आलोचना की गयी थी । अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इसके पक्ष और विपक्ष में लेख और टिप्पणियां प्रकाशित हुईं । विरोधियों ने उक्त पुस्तक को रद्दी बताकर घोषणा की कि उसे देव-पुरस्कार न दिया जाय । पुरस्कार की घोषणा होने तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में यह दंगल चलता रहा ।

इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि बड़ी मनोरंजक है । इसका विस्तृत विवरण हमें मुंशी अजमेरी द्वारा पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे गये पत्रों में मिलता है । इन पत्रों के आधार पर इस आंदोलन की पूर्वपीठिका को

---

१ "साहित्य और जीवन" (१९५४), बनारसीदास चतुर्वेदी ,
पृ० ४ से उद्धृत ।

इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :-

झाँसी में तुलसी-जयन्ती के अवसर पर एक बृहत् कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया था । इस सम्मेलन के सभापति दुलारेलाल भार्गव थे । मुंशी अजमेरी भी उसमें शामिल हुए थे । सम्मेलन शाम को था और तीसरे पहर इकट्ठे हुए कवियों के सम्मुख भार्गव जी अपनी दोहावली के दोहे सुना रहे थे । वे उन दोहों की व्याख्या भी करतेथे और बीच-बीच में यह भी कहते जाते थे कि अमुक कवि ने मुझसे कहा कि आपका यह दोहा बिहारी की टक्कर का है, यह मतिराम के उस दोहे से बढ़ा गया है, इत्यादि । मुंशी अजमेरी बड़े विनोद-प्रिय व्यक्ति थे । उन्होंने उस कवि-मण्डली में भार्गव जी की दोहावली की प्रशंसा में तीन दोहे सुनाये ।[१] सब कवि दोहों को सुनकर हंसने लगे । भार्गव जी ने मुंशी अजमेरी से कहा कि ये दोहे आप हमें लिख दीजिए । मुंशी जी जानते थे कि भार्गव जी उन दोहों को छापेंगे नहीं, क्योंकि वे दोहे विनोद में बनाये गये थे । फिर भी उन्होंने तीनों दोहे लिख दिये । भार्गव जी ने तीसरे दोहे को छोड़कर शेष दो दोहे मुंशी जी की सम्मति के रूप में छाप दिये । मुंशी जी उनसे बहुत लड़े कि यदि छापना था तो तीनों दोहे छापते । या तो आप तीनों दोहे छापिए या वे दो दोहे निकाल दीजिए । भार्गव जी ने हंसकर कहा निकाल देंगे ।

इसके बाद पं० बनारसीदास चतुर्वेदी टीकमगढ़ में मुंशी अजमेरी से मिले तो उन्होंने उन तीनों दोहे चतुर्वेदी जी को सुनाये और कहा कि

---

१ "बनक बिहारीलाल की अरु रहीम की उक्ति ,
मादकता मतिराम की त्यों जमाल की जुक्ति ।
पदमाकर की पद अवलि, रसनिधि की रसनीति ,
विदित वृन्द की विग्यता, रतनाकर की रीति ।
दोहनि में दरसायबौ आठ ठाठ कौ मेल ,
सुकवि दुलारेलाल कों बांएं हाथ कौ खेल ।"

-"स्वर्गीय मुंशी अजमेरी के पत्र",
सम्मेलन पत्रिका, पौष-ज्येष्ठ १८८७,
पृ० ५८ ।

भार्गव जी ने दो दोहे छाप डाले, तीसरे को छोड़ दिया, इत्यादि । चतुर्वेदी जी ने कहा हमें लिख दीजिएगा । मुंशी जी ने पत्र द्वारा तीनों दोहे लिख भेजे । चतुर्वेदी जी ने दिसम्बर १९३४ के "विशाल भारत" में उन दोहों को इस प्रकार प्रकाशित किया जैसे वे सम्मति से उद्धृत किये गये हों । वास्तव में सम्मति में तो दो ही दोहे छपे थे । भार्गव जी ने जानबूझकर तीसरा दोहा छोड़ दिया था, क्योंकि उसमें व्यंग्य था । उस तीसरे दोहे को लेकर जनवरी १९३५ के "विशाल भारत" में बड़ा ऊहापोह किया गया । सन् १९३५ के "विशाल भारत" में छपे पं० शालिग्राम शास्त्री के "सन् १९३४ का बौड़मपन" शीर्षक लेख में मुंशी अजमेरी के दोहे का अर्थ व्यंजना से न लेकर अभिधा से लिया गया । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनसे तीसरा दोहा प्राप्त कर समालोचक-शिरोमणि से उनकी जो छीछालेदार करा दी, उस पर उन्होंने कड़ा विरोध प्रकट किया । चतुर्वेदी जी ने अपनी भूल स्वीकार की और सजा देने की बात भी लिखी, किन्तु मुंशी जी ने इस साहित्यिक नोंक झोंक के बावजूद भी चतुर्वेदी जी से पूर्ववत् सम्बन्ध बनाये रखा ।[१]

इस विवाद की समाप्ति का संकेत हमें स्वर्गीय सैयद अमीर-अली "मीर" के २१-२-१९३५ को पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे पत्र में मिलता है । इस पत्र को यहां हम उद्धृत करते हैं :-

"आदरणीय पंडित जी ,

सादर सलाम ।

" दुलारे दोहावली" को लेकर इस समय हिन्दी-संसार में एक तूफान-सा आया दीखता है । "रतलाम टाइम्स" ता १४-२ का आपके पास पहुंचा ही होगा । आज फरवरी के "विशाल भारत" में मैंने "चिट्ठी-पत्री" स्तम्भ में वाजपेयी की शानदार चिट्ठी पढ़ी । " रतलाम टाइम्स" में प्रकाशित" दुलारे दोहावली दंगल" याद आया । उसकी कटिंग सेवा में भेज रहा हूं । अगले (मार्च) के अंक में आप इस पत्र का उत्तर न देने वाले हैं । उत्तर तो देना ही होगा । लेकिन आपने यह ठीक ही लिखा कि" उसे (उत्तर-

---

१ "स्वर्गीय मुंशी अजमेरी के पत्र", सम्मेलन पत्रिका , पौष-ज्येष्ठ, १८८७ शक, पृ० ५७ ।

को) अगले अंक में देकर विवाद को समाप्त कर देंगे" सचमुच सम्पादक का कार्य अत्यन्त महत्व का होने पर भी अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण है । वह सब-का सबको खुश नहीं कर सकता । मालूम नहीं, "सुधा" ने आप पर सुधा-वर्षा की या विष-वर्षा और भी उनके (दुलारे जी के) जो दुलारे पत्र हैं , वे क्या लिख रहे हैं ? कुशल समाचार लिखते रहिये ।"[1]

इस प्रकार मार्च १९३५ में इस विवाद को समाप्त कर दिया गया । यहां स्मरणीय है कि जिस पुस्तक को देव-पुरस्कार से वंचित रखने के लिए यह आन्दोलन छेड़ा गया था, उसी पुस्तक को निर्णायकों ने देव-पुरस्कार के लिए उचित ठहराया । इसलिए मुंशी अजमेरी ने पं० बनारसी-दास चतुर्वेदी को अपने १५-२-१९३५ के पत्र में लिखा था -

"इस पुरस्कार को लेकर जैसा आंदोलन किया गया, वह बहुत ही अनुचित था, इसलिए आगे ऐसा आन्दोलन न किया जाय तो बहुत अच्छा"।[2]

घासलेटी-साहित्य विरोधी आन्दोलन, वर्तमान धर्म-विवाद और दुलारे दोहावली-दंगल- इन तीनों आन्दोलनों से अनेक व्यक्तियों को बहुत कष्ट पहुंचा । साथ ही, "विशाल भारत" और पं० बनारसीदास - चतुर्वेदी की प्रतिष्ठा को धक्का भी लगा । "विशाल भारत" घाटा उठा रहा है", यह समाचार जानकर पं० पद्मसिंह शर्मा ने अपने २६-२-१९२८ के पत्र में चतुर्वेदी जी को लिखा था - " विशाल भारत को लोग पसन्द तो करते हैं, पत्र निकल भी अच्छा रहा है । फिर क्या बात है ? घासलेटी-विरोध ने हानि पहुंचाई इसमें सन्देह नहीं । मैंने पहले ही आपको पत्र लिखा था कि यह बला सिर पर न लीजिए । कोरे सिद्धांतवाद से व्यापार में काम नहीं चलता ।"[3] परन्तु चतुर्वेदी जी अपने सिद्धांतों के लिए लड़ते रहे और उस लड़ाई में उनसे जाने-अनजाने में कई साहित्यिक अनर्थ भी हो गये ।

---

१ "स्वर्गीय सैयद अमीर अली मीर के पत्र", सम्मेलन पत्रिका, अषाढ़-मार्ग० १८८५ शक, पृ० १०६ ।

२ "स्वर्गीय मुंशी अजमेरी के पत्र", सम्मेलन पत्रिका, पौष-ज्येष्ठ १८८७, पृ०६७ ।

३ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र " (१९१५- १९५६), पृ० ७५-७६ ।

(vi) जनपदीय - आन्दोलन :

जनपदीय आन्दोलन पूर्व चर्चित आन्दोलनों से भिन्न प्रकार का आन्दोलन था । इसका उद्देश्य जनपदीय भाषा और साहित्य की ओर हिन्दी-संसार का ध्यान आकृष्ट करना था । इस आन्दोलन का प्रवर्तन डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने किया और पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनको अपूर्व सहयोग दिया । बाबू वृन्दावनदास के अनुसार "यदि चतुर्वेदीजी का उनको इस दिशा में पूरा सहयोग न मिला होता तो जनपदीय आन्दोलन का भविष्य कभी मुखरित न होता ।"[१]

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे गये पत्र वस्तुत: जनपदीय आन्दोलन के विश्वकोष हैं । कोई भी विद्वान् इन पत्रों से जनपदीय आन्दोलन का रूप, उसका महत्व, उसकी उपयोगिता का अनुमान लगा सकता है ।"[२]

जनपदीय आन्दोलन को डा० वासुदेवशरण अग्रवाल राष्ट्रीय महत्व का मानते थे । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम भेजे गये एक पत्र में उन्होंने लिखा था :

"जनपदीय जीवन के साथ हमारे परिचय का विस्तार एक राष्ट्रीय महत्व की समस्या है । जनपदीय साहित्य का कार्य भी उसीका एक अंग है । मेरी समझ में हमारे भावी जीवन के पचास वर्षों का दिक् मंत्र जनपदीय कार्य में समवेत है ।"[३]

डा० अग्रवाल जनपदीय सामग्री को "जनपद कल्याणीय" और बाहर से प्राप्त सामग्री को "सेतुबंध" की उपमा देते थे ।[४] उनकी दृष्टि में जनपदों के प्राण-प्रद वायु में अपूर्व जीवन-रस भरा हुआ है । पुर और जनपद दोनों को एक-दूसरे की आवश्यकता है ।[५]

१" डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), भूमिका, पृ० २२ ।

२" - वही -, ।

३" -वही -, पृ० १०५ ।

४" डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र", पृ० १०९-११० ।

५ -वही -, पृ० १०९ ।

यहाँ उल्लेखनीय होगा कि डा० वासुदेवशरण अग्रवाल जनपदीय कार्य और प्रान्त-निर्माण आन्दोलन को बिलकुल पृथक् मानते थे । उन्होंने वैशाख पूर्णिमा संवत् २००० वि० को चतुर्वेदी जी के नाम लिखे गये पत्र में स्पष्ट निर्देश दिया था :

"- - - इस आन्दोलन को शुद्ध सांस्कृतिक रखना आवश्यक है । पृथक् प्रान्त निर्माणरूपी राजनीतिक पहलू अभी बिलकुल न उठाया जाना चाहिए, अन्यथा आपका उद्देश्य खटाई में पड़ जायेगा ।"[1]

किन्तु चतुर्वेदी जी डा० अग्रवाल के निर्देश का स्वीकार नहीं कर पाये । "मधुकर" के "जनपद-अंक" में श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने उनकी स्थिति बिलकुल स्पष्ट कर दी । इस सम्बन्ध में चतुर्वेदी जी ने लिखा है :

"श्री अग्रवाल की यह इच्छा स्वाभाविक ही थी कि मैं उनके शुद्ध साहित्यिक जनपदीय आन्दोलन तक ही अपनी शक्ति सीमित रखूं, पर मेरेलिए यह सम्भव नहीं था । भाई जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने "मधुकर" के "जनपद-अंक" में, जो उन्हीं के द्वारा सम्पादित हुआ था, मेरी स्थिति को बिलकुल स्पष्ट कर दिया था । बावजूद इस मतभेद के अग्रवाल जी तथा मेरी साहित्यिक मैत्री में कोई बाधा नहीं पड़ी ।"[2]

इस प्रकार श्री चतुर्वेदी जी ने जनपद आन्दोलन में प्रान्त-निर्माण आन्दोलन को भी सम्मिलित कर दिया । बाबू वृन्दावनदास के नाम लिखे गये उनके पत्रों में व्रजप्रान्त-निर्माण का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है, यद्यपि उनका व्रजप्रान्तनिर्माण-समर्थन साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है । यथा -

"- - - हम लोग - मेरे जैसे आदमी आते हैं और चले जाते हैं, पर हमारा जनपद-व्रजभूमि तो रहेगी ही ।"[3]

" एक विचारोत्तेजक सरक्यूलर लैटर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को भेजने की जरूरत है- व्रजप्रान्त निर्माण के विषय में - जिससे प्रेरित

---

१ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र", पृ० १०३ ।

२ "स्वर्गीय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र", श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, सम्मेलन पत्रिका", भाग-५२, सं० ३-४, पृ० २९-३० ।

३ "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ० १०१ ।

होकर वे लोग अपनी सम्मति उस बारे में लिख भेजें । प्रान्त बने या न बने पर चलाने से कुछ जागृति तो आवेगी ही । वस्तुत: मेरी रुचि जितनी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जागरण में है उतनी राजनैतिक पुनर्गठन में नहीं[1] ।

पं० चतुर्वेदी से प्रेरित होकर बाबू वृन्दावन दास ने जनपदीय आन्दोलन की दिशा में लोगों का ध्यान आकृष्ट करने का भरसक प्रयास किया । "अमर उजाला" में जनपदीय आन्दोलन पर प्रकाशित उनके लेख की अनेक विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी ।[2] डा० राजेन्द्र रंजन को लिखे गये पत्र में उन्होंने जनपदीय आन्दोलन के पुन: श्रीगणेश करने की इच्छा प्रकट की है -

"जनपदीय आन्दोलन का श्रीगणेश करना ही है । टूटी हुई कड़ी को जोड़ने का अवसर आ गया है । मैंने चतुर्वेदी जी से भी उनका परामर्श मांगा है ।"[3]

इस प्रकार सन् १९४३ में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा प्रवर्तित किया गया जनपदीय आन्दोलन आज तक अनेक रूपों में चल रहा है । डा० अग्रवाल शुद्ध सांस्कृतिक जनपदीय आन्दोलन में आस्था रखते थे । परवर्ती काल में प्रान्त-निर्माण का आन्दोलन भी जनपदीय आन्दोलन का हिस्सा बन गया ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों में अनेक साहित्यिक वाद-विवादों तथा आन्दोलनों के बहुमूल्य सन्दर्भ-सूत्र प्राप्त होते हैं । इन सन्दर्भसूत्रों से साहित्यिक विवादों एवं आन्दोलनों के यथार्थ अध्ययन में अपूर्व सहायता मिलती है ।

(ख) साहित्यिक चोरी के सन्दर्भ :

संसार का साहित्य इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक युग के साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से प्रेरित और प्रभावित रहे हैं । अत: यदि दो साहित्यकारों की कृतियों में कहीं भाव-साम्य दीख पड़े तो उसे

---

१ "व्रज भारती", मार्गशीर्ष, सं० २०२४ वि० पृ० ११ ।
२ "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ० १४९ ।
३ "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ० १५२ ।

साहित्यिक चोरी कहना ठीक न होगा । किन्तु किसी से प्रेरणा ग्रहण करना या प्रभावित होना एक बात है और किसी की वस्तु ज्यों की त्यों उठा लेना दूसरी बात है । किसी लेखक से प्रेरित प्रभावित होना कोई अपराध नहीं है, किन्तु किसी लेखक की चीज़ ज्योंकी त्यों उठा लेना साहित्यिक चोरी है । हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों में इस प्रकार की साहित्यिक चोरी के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ मिलते हैं ।

सन् १८९९ ई० में पटना निवासी श्री पत्तनलाल(सुशील कवि) ने अपनी बनाई "उकाड़ गाँव", "साधु" और "यात्री"- नाम की तीन पुस्तकें "भारत मित्र" को समालोचनार्थ भेजी थीं । भारत मित्र के तत्कालीन सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त को इन पुस्तकों में दी गयी सामग्री पं० श्रीधर पाठक की "एकान्तवासी योगी" तथा "उजड़-ग्राम" से चुराई गयी प्रतीत हुई । अत: "भारत मित्र" में उन्होंने उक्त पुस्तकों की कड़ी आलोचना "कविता पर कविता" शीर्षक से प्रकाशित की और पं० श्रीधर पाठक को इस बात की सूचना देते हुए लिखा :-

"पत्तनलाल की पुस्तक ईश्वर ने चाहा तो फिर न छपेगी । आपके अनुत्साह ही का कारण है कि आपकी कविता की चोरी हुई । अनुत्साह ने आपको गुमनाम कर दिया । गुमनाम का माल हर कोई चुरा सकता है । जरा मैदान में आइये, देखें फिर कोई कैसे आपका माल चुराता है ।"[१]

गुप्त जी की आलोचना से श्री पत्तनलाल (सुशील कवि) इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी ओर से उत्तर लिख भेजा और गुप्तजी की आलोचना का औचित्य स्वीकार किया । श्री सुशील कवि का लिखा पत्र "बालमुकुन्द गुप्त स्मारक - ग्रंथ"[२] में मुद्रित है । इससे स्पष्ट होता है कि गुप्त जी हिन्दी साहित्य-क्षेत्र की पूरी खोज-खबर रखते थे । उनकी यह धारणा उचित ही है कि साहित्यिक चोरी में कवि का अनुत्साह कम उत्तरदायी नहीं होता ।

इसी प्रकार की साहित्यिक चोरी का रोचक सन्दर्भ हमें पं० पद्मसिंह शर्मा द्वारा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को प्रेषित एक पत्र में

---

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र"(१९५८), पृ० २०६ ।

२ देखिए: बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रंथ (१९५०), पृ० १०५-१०६ ।

प्राप्त होता है । आचार्य द्विवेदी ने एक बार शर्माजी को "सरस्वती" के लेख चुराये जाने की बात लिखी थी । इसका उल्लेख करते हुए वे अपने २०-११-१९०६ के पत्र में लिखते हैं :-

"मैं आजकल एक जैन सम्बन्धी महाकाव्य देख रहा हूं । इस पर कुछ लिखने का भी विचार है, उसके महाकवि ने कालिदासादि महाकवियों के सूक्ति रत्नों को इस प्रकार चुराया है कि उसके साहस पर आश्चर्य होता है । आपको जो "सरस्वती" के लेख चुराये जाने की प्राय: शिकायत रहा करती है, उसको देखकर आपको संतोष होगा कि यह कोई नई बात नहीं है, किन्तु "एष धर्म: सनातन"। मैं ने उस पर बहुत से नोट्स कर लिये हैं, शीघ्र लिखना प्रारम्भ करूंगा । इस प्रकार शायद आपकी आज्ञा पालन भी हो जाय और कालिदासादि के चुराये हुए माल का भी कुछ पता चल जाय ।"[१]

साहित्यिक चोरी की चर्चा महाकवि निराला के एक पत्र में भी मिलती है । यह पत्र डा० रामविलास शर्मा के एक प्रश्न के उत्तर में लिखा गया था । डा० शर्मा ने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी से पहली मुलाकात और निरालाजी के विरुद्ध उनके पहले लेख कब निकले, इस सम्बन्ध में प्रश्न किया था । निरालाजी ने अपने विरोधाचार की व्यौरेवार चर्चा में "मतवाला" काल की एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि -

"प्रभा" में, शायद १९२४ में ऐसी दो रचनाओं की चोरी प्रमाणित की गई । लिखने वाले ने उपनाम देकर लिखा । पं० बालकृष्ण शर्मा "नवीन" को उनका असली नाम मालूम होगा ।"[२]

इस पत्र में उल्लिखित चोरी का सम्बन्ध "प्रभा" में प्रकाशित "भावों की भिड़न्त" शीर्षक लेख से है । यह लेख "श्रीयुत भावुक" के नाम से छपा था । सेठ महादेव प्रसाद ने २४-९-१९२४ को शिवपूजन सहाय के नाम पत्र लिखकर लेखक के असली नाम का पता लगाने के लिए कहा था । किन्तु शिवजी सही जानकारी न भेज सके । इस लेख के असली लेखक के नाम के

---

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० १२३ ।

२ "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ० ३९६ ।

सन्दर्भ में डा० लक्ष्मीनारायण दुबे ने उन्हें प्राप्त राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के २-११-१९६१ के पत्र के आधार से लिखा है कि "भावों की ~~[illegible]~~-भिड़न्त" नामक लेख के वास्तविक लेखक मुंशी अजमेरी थे ।"[१]

इस प्रकार साहित्यकारों के पत्रों में समकालीन साहित्यिक चोरी के अनेक मनोरंजक और महत्वपूर्ण सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं ।

(ग) साहित्यिक पत्रिकाओं की स्थिति और

सम्पादकों के पारस्परिक राग-द्वेष के सन्दर्भ :

हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों में समकालीन पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति एवं सम्पादकों के पारस्परिक राग-द्वेष की स्पष्ट झलक मिलती है । भारतेन्दु तथा द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के पत्रों को पढ़ने से विदित होता है कि तत्कालीन अनेक पत्र-पत्रिकाएं घाटे में चल रही थीं और अन्त में इसी कारण बन्द हो गयीं । हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी-विवाद की चर्चा में, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा पं०चिन्तामणि को लिखे गये पत्र के अंश में हम देख चुके हैं कि सरकार ने जब उनके द्वारा सम्पादित पत्रिकाओं को खरीदना बन्द कर दिया तो उनको कितना दु:ख हुआ था । ऐसी आर्थिक तंगदिली में लेखकों को पारिश्रमिक देना कैसे सम्भव होता ? पं० श्रीधर पाठक ने बाबू बालमुकुन्द गुप्त के नाम अपने एक पत्र में अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा करते हुए पारिश्रमिक की बात लिखी थी । ~~उस~~ इसके उत्तर में गुप्तजी ने लिखा था :

"रही दाम देकर लिखाने की बात सो हिन्दी के भाग्य में अभी यह बात नहीं है । अंग्रेजी अखबारों के भाग्य में और हिन्दी अखबारों के भाग्य में सोने और मिट्टी का फर्क है । २ रु० के भारत मित्र को भी खरीदार चाव से नहीं खरीद सकते हैं । आपकी कविता ही को सौ में दो भी समझने वाले नहीं । ऐसी हीन दशावाली हिन्दी पर आपको दया ही चाहिये ।"[२]

---

१ "बालकृष्ण शर्मा 'नवीन': व्यक्तित्व एवं काव्य" (१९६४), पृ० ९६ ।

२ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० २१० ।

"सरस्वती", "विशाल भारत", "हंस" आदि कुछ पत्र-पत्रिकाओं से लेखकों को "पत्र-पुष्प" मिल भी जाता था, किन्तु उन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों को ग्राहक-संख्या की सतत चिन्ता रहा करती थी । "सरस्वती"- सम्पादन के प्रारम्भ में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने पं० जनार्दन झा के नाम एक पत्र में लिखा था ।

"सरस्वती" के स्वामी उसे आगले वर्ष से बन्द करना चाहते हैं ।"[1]

इसी प्रकार "जागरण" और हंस" की स्थिति का चित्र प्रेमचन्द जी द्वारा जैनेन्द्रकुमार को लिखे गये १५ अगस्त, १९३२ के पत्र में देखने को मिलता है :-

"जागरण" के बारह अंक निकले लेकिन ग्राहक संख्या दो सौ से आगे न बढ़ी । विज्ञापन तो व्यासजी ने बहुत किया, लेकिन किसी वजह से पत्र न चला । उन्हें उस पर पन्द्रह सौ का घाटा रहा । - - - हंस" में कई हजार का घाटा उठा चुका हूं ।"[2]

प्रेमचन्द जी "हंस" के घाटे से चिन्तित थे, परन्तु जब कुछ समय बाद उन्हें पं० बनारसीदास चतुर्वेदी से यह सूचना मिली कि "विशाल भारत" भी घाटा में चल रहा है, तो उन्हें बहुत दु:ख हुआ । चतुर्वेदी जी के नाम अपने १८ मार्च, १९३६ के पत्र में उन्होंने लिखा :

"दु:ख हुआ कि "विशाल भारत" अब भी घाटा दे रहा है । कितने अफ़सोस की बात है कि पहला हिन्दी पत्र जिसे सब सर्वश्रेष्ठ हिन्दी मासिक के रूप में जानते-मानते हैं, इस हालत में हो । इससे हमारी सांस्कृतिक मनोवृत्ति का पता चलता है ।"[3]

द्विवेदी-युग तथा छायावाद-युग के प्रमुख समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं का मनोरंजक विवरण यदि एक ही पत्र में देखना चाहें तो हमें आचार्य शिवपूजन सहाय द्वारा "उग्र" जी के नाम लिखे गये १९-८-१९२५ के पत्र के अधोरेखांकित अंश का अवलोकन करना चाहिए -

---

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० ६ ।

२ "चिट्ठी-पत्री भाग-२ (१९६२), पृ० २६ ।

३ " -वही-, पृ० ९४ ।

"प्रभा" बन्द हो गई । "प्राणवीर" भी बन्द हो गया । "कर्मवीर" खण्डवा से निकाला चतुर्वेदी जी ने । पालीवाल जी ने आगरा से "सैनिक" अच्छा निकला । बम्बई से "भगीरथ" भी अच्छा निकला । "प्रताप" खूब बढ़िया निकल रहा है । "गोलमाल मौं" बन्द । "भूत" जारी है । दिल्ली से मासिक "महारथी" निकलेगा । "अर्जुन" साप्ताहिक हो गया । "सत्यवादी" लाहौर चला गया । "माधुरी" का मूल्य १) बढ़ गया । कुछ मैटर बढ़ेगा । "चांद" का शिशु अंक, वेश्या अंक निकला । "प्रवासी" अंक निकलेगा । सती अंक भी । शिशु अंक के एक लेख पर टिप्पनी लिखने से रूठकर प्रतापपुर "चांद" ने ५००० रु० का नोटिस जारी किया था । मामला सम्मेलन ने लिया है । देखा चाहिए । अपना समाचार लिखना ।"[1]

हिन्दी के विभिन्न समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं के अनेक रोचक किस्से "उग्र" जी द्वारा सम्पादित "फाइल और प्रोफाइल" शीर्षक पत्र-संग्रह में भरे पड़े हैं । "हिन्दी पंच" की विस्तृत जानकारी भी इसी पुस्तक में मिल सकती है ।

भारतेन्दु-युग से लेकर वर्तमान-युग के समाचार पत्रों के सम्पादकों के पारस्परिक राग-द्वेष की झांकी भी साहित्यिकों के वैयक्तिक पत्रों में मिल जाती है । इस सम्बन्ध में "उचितवक्ता" के २४ सितम्बर १८८१ के अंक में "संवादपत्रों का पारस्परिक विरोध" शीर्षक से एक लम्बा ऐतिहासिक पत्र प्रकाशित हुआ था । "हिन्दी प्रदीप" और "प्रयाग-समाचार" का वाद-विवाद भी सैद्धान्तिक कम वैयक्तिक अधिक था ।[2] तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक एक-दूसरे को धमकी भी देते थे । "काव्य-सुधाधर" के सम्पादक दत्त द्विजेन्द्र ने एक धमकी-पत्र के उत्तर में लिखा है -"- - - और धमकी से डरना दत्त द्विजेन्द्र नहीं जानता ।"[3]

भाषा के मामले पर "भारतमित्र" के सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त से संघर्ष हो जाने पर आचार्य द्विवेदी जी ने पं० पद्मसिंह शर्मा के नाम अपने ८-१२-१९०५ के पत्र में लिखा था -" यह अखबार हमेशा से हमारे खिलाफ लिखता आया है । पहले हम को देवता समझता था । अब कारण

---

१ "फाइल और प्रोफाइल" (१९७०), पृ० ३६२ ।
२ "बालमुकुन्द गुप्त : एकमूल्यांकन" (सं० २०२२), पृ० १९७ ।
३ "काव्य-सुधाधर" १९०२-१९०३, पंचमवर्ष, पृ० २२ ।

विशेष से दैत्याधम ।"[1] एक अन्य पत्र में आचार्य जी ने पं० शर्मा जी को लिखा था -" वेंकटेश्वर इत्यादि सरस्वती का नाम शायद इसलिए नहीं देते क्योंकि हमने आज तक उनकी समालोचना नहीं की ।"[2]

इस प्रकार साहित्यकारों के पत्रों में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों के पारस्परिक राग-द्वेष की सुन्दर झांकी मिलती है ।

(घ) साहित्यिक समारम्भों, गोष्ठियों आदि के सन्दर्भ :

साहित्यकारों के पत्रों में साहित्यिक गोष्ठियों, उत्सवों, कवि-सम्मेलनों आदि के सन्दर्भ भी यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाते हैं । साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अध्ययन के लिए इन सन्दर्भों का बहुत बड़ा महत्व है । यहां हम कुछ महत्वपूर्ण साहित्यिक समारम्भों की झलक प्रस्तुत करते हैं ।

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने अपने एक पत्र में पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय की अध्यक्षता में स्थापित "साहित्य-सेवी समुदाय" की चर्चा की है जिसका उद्देश्य सामाजिक विषयों पर समय-समय पर लेख लिखना और यथाशक्ति समाज की बढ़ती हुई उच्छृंखलता का सुधार करना था ।[3]

महाकवि निराला ने प्रसाद जी के नाम प्रेषित एक पत्र में कानपुर के डी०ए०वी० कालेज के कविसम्मेलन के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था -" कानपुर के डी०ए०वी० कालेज का कवि-सम्मेलन देखा । निबाह किया गया किसी तरह । वहां के विद्यार्थी आपके "आंसू" के बड़े भक्त मिले । जान पड़ता है कि छायावादियों के ही हाथ रहेगी ।"[4]

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने १७-३-१९३१ को प्रसाद जी के नाम पत्र लिखकर हिन्दुस्तानी एकेडेमी की लिटररी कान्फरन्स में पधारने का आग्रह भरा निमंत्रण भेजा था ।[5] यह पत्र पंतजी और प्रसाद जी के स्नेह का उत्तम नमूना है ।

---

१ "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्रसंग्रह", भारतीय साहित्य, जुलाई-अक्टू-१९६२ पृ० १५९ ।
२ -वही-, जनवरी १९६२, पृ० ९४
३ "नन्ददुलारे वाजपेयी के पत्र-निराला के नाम", भारतीय साहित्य वर्ष-१४ अंक-३,४ । पृ० १७८-१७९ ।
४ "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ० १९१। ५- -वही-, पृ० १८५-८६ ।

मुंशी अजमेरी ने अपने १५-२-१९३५ के पत्र में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को झांसी में तुलसी-जयन्ती पर समायोजित बृहत् कवि-सम्मेलन की पूर्व भूमिका का बड़ा रोचक वर्णन लिख भेजा है ।[1] दुलारे दोहावल-दंगल के इतिहास में यह कवि-सम्मेलन अपना अलग महत्व रखता है ।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने पत्र-व्यवहार को एक व्यसन के रूप में स्वीकार किया था और कुछ साहित्यकारों को लेकर एक "पत्र-व्यवहार गोष्ठी" का समायोजन किया था ।[2] आचार्य शिवपूजन सहाय, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल[3] आदि साहित्यकार इस गोष्ठी के सदस्य थे । हिन्दी-पत्र साहित्य के विकास में इस साहित्यिक गोष्ठी का विशेष महत्व है ।

"निराला की साहित्य-साधना भाग-३" में अनेक कवि - संमेलन के संदर्भ मिलते हैं । इसमें इलाहाबाद में स्थापित "साहित्यकार संसद्" का उल्लेख भी निराला जी के १५-५-१९४५ के पत्र में हुआ है । यह पत्र केदारनाथ अग्रवाल के नाम लिखा गया था । इसमें "साहित्यकार संसद्" का संक्षिप्त परिचय देकर उसे सहयोग देने का अनुरोध किया गया है ।[4]

---

१ "स्वर्गीय मुंशी अजमेरी के कुछ पत्र", सम्मेलन पत्रिका, भाग-५२, सं० १,२ पृ५७।

२ "पत्र-व्यवहार गोष्ठी का सदस्य होने की इच्छा और श्रद्धा है । गोष्ठी में आस्था भी है । सम्भव है, कभी-कभी पत्रोत्तर में कुछ विलम्ब हो - - "
- - (चतुर्वेदी जी के नाम शिवजी का भाद्रपूर्णिमा २००१ का पत्र)
- "नई धारा" "शिवपूजन स्मृति-अंक, "वर्ष-१४, अंक-१,४, पृ० ४७४ ।

३ "पत्र व्यवहार परिषद की पद्धति अच्छी है । चलाइये । मैं उसमें रूचि रक्खूंगा ।"
- (डा०वासुदेवशरण अग्रवाल का चतुर्वेदीजी के नाम १०-३-४४का पत्र)
- "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ० १४८ ।

४ "साहित्यकार संसद्" नाम से अपनी व्याख्या करती है । साहित्यों की एक ही संस्था है । साहित्यिक और धनिक मदद कर रहे हैं । आप भी कुछ कीजिए । महादेवी जी सेक्रेटरी हैं, मैथिलीशरण जी सभापति, बहुत से गण्य लेखक सभासद हैं, राय कृष्णदास कोषाध्यक्ष हैं, मैं साहित्यकार हूं, प्रकाशन मेरे संग्रह का पहला हो रहा है, रुपये ५००)अग्रिम मिले ।"
- "निराला की साहित्य - साधना" - ३ , १९७६),
पृ० ३४१-३४२ ।

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने ५ दिसम्बर १९४७ के पत्र द्वारा "लोकायतन पीठ" के रजिस्ट्रेशन की बच्चन जी को सूचना दी है।[1] इस पीठ के सचिव के रूप में बच्चन जी को नियुक्त किया गया था और "लोकचेतना" नामक पत्रिका भी प्रकाशित की गयी थी।[2]

"बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" शीर्षक पुस्तक में कवि-सम्मेलनों, लेखक-सम्मेलनों, साहित्यिक उत्सवों आदि के अनेक सन्दर्भ बड़ी सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। पन्त जी ने इन साहित्यिक समारम्भों का केवल उल्लेख ही नहीं किया है, अपितु उन पर अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त की है। उदाहरणस्वरूप जयपुर के कवि-सम्मेलन,[3] इलाहाबाद के लेखक-सम्मेलन[4] तथा प्रेमचन्द स्मृति दिवस पर आयोजित समारोह[5] पर उनकी प्रतिक्रियाएं देखने योग्य हैं।

कवि-सम्मेलनों की उपयोगिता वर्तमान युग में कवि-सम्मेलनों की स्थिति, उनके आदर्श स्वरूप आदि पर यथेष्ट रूप से प्रकाश कविवर बच्चन

---

१ "कवियों में सौम्य संत" (१९६०), बच्चन, पृ० ५६।

२ -वही-, पृ० ५८-५८।

३ "जयपुर का कवि-सम्मेलन शतप्रतिशत वोरडम रहा- माचवे का फ़ोन और सुमन जी का व्याख्यान सब मन मार के सुनने पड़े कि तुम क्या सुनानेवाले हो। पीड़ा को भगवान बनाने वाली श्रीमती कौल तो बस न पूछो। श्रीगणेश ही कुछ ऐसा हुआ कि फिर सम्मेलन संभल नहीं सका।"

- "बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ० २४।

४ "लेखक सम्मेलन में कोई विशेष बात नहीं। दिनकर जी, यशपाल जी आए थे। मैं तो उसमें जा ही नहीं सका - - - कुछ लेखक सम्मेलनों में जन-संघीपन आ जाता है, यहां भी सुना अपवाद नहीं था। - - - - "

- वही -, पृ० ३०।

५ "यहां प्रेमचन्द-स्मृति दिवस मनाया गया। ८ तारीख को (अक्टू०-१९६२) प्रेमचन्द जी के ९ अनुपलब्ध ग्रंथ भी प्रकाशित होकर उसदिन प्रदर्शित किए गए। अमृतराय ने उनकी एक ८०० पृष्ठ की जीवनी लिखी है, वह भी निकल गई, बड़े परिश्रम से लिखी है।

- वही -, पृ० ३३।

ने डा० जीवन प्रकाश जोशी को लिखे पत्रों में डाला है । उन्होंने अपने ६-८-१९६७ के पत्र में कवि-सम्मेलनों पर ऐतिहासिक, तात्त्विक एवं मौलिक दृष्टि से विचार प्रस्तुत किये हैं, वे सारगर्भित एवं सराहनीय हैं ।[१]

इस प्रकार पत्रों के द्वारा साहित्यिक गोष्ठियों, समारोहों, कवि-सम्मेलनों आदि की बड़ी मनोरंजक तथा विचारोत्तेजक घटनाएं हमें पढ़ने को मिलती हैं । इन घटनाओं से हमारे मानस-पट पर अनेक साहित्यिक व्यक्तियों के चित्र अंकित हो जाते हैं और हम कुछ क्षणों के लिए अलौकिक जगत् में खो जाते हैं ।

---

१ - - - - मध्ययुगीन राज-दरबारों में कवि-सम्मेलनों अथवा काव्य-प्रतियोगिताएं (समस्या पूर्ति के आधार पर) होती थीं, वहीं से हिन्दी कवि-सम्मेलन का आरम्भ मान लें । खड़ी बोली आन्दोलन के साथ मुशायरों की नकल पर कवि सम्मेलन चले । - - - - समस्या पूर्ति युग के बाद छायावादी युग में कवि-सम्मेलन बहुत "डल" होते थे । निराला-पन्त को लोग सुन लेते थे । उल्लास "मधुशाला" से आया । पर उस पर मेरा अधिक कहना ठीक नहीं । - -- - - - - -पढ़ने (आंखों से) के लिए और सुनाने के लिए जो कविता लिखी जाएगी उसमें भाषा में विशेषत:, परन्तु भावों में भी अन्तर होना स्वाभाविक है । कवि-सम्मेलनी कविताओं में भाषा सरल हुई होगी, जीवन के निकट आई होगी । पर खतरा भी खड़ा हो गया । भावों में गहराई की कमी आई होगी । - - - - - हिन्दी कवि-सम्मेलनों में भाव-ह्रास की भूमिका देखकर अच्छे कवि उससे विरक्त हो गए । - - - - कवि-सम्मेलन तो शायद नहीं घट रहे हैं, पर उच्चकोटि की प्रतिभाओं ने उनसे प्राय: पूरी तरह किनारा कस लिया है । जनता की रुचि के स्तर के उठने और उच्चकोटि के कवियों के कवि-सम्मेलन में भाग लेने से यह माध्यम साहित्य के विकास में, विशेषकर काव्य के विकास में बड़ा सशक्त सिद्ध होगा ।"

-"बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ० १०८-१०९ ।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर सार-रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी पत्र-साहित्य में समकालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक इतिहास के जो बहुमूल्य सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, वे साहित्य की अन्य किसी विधा में नहीं मिलते । इन सन्दर्भ-सूत्रों से अनेक ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि होती है, नये तथ्यों पर प्रकाश पड़ता और प्रसिद्ध व्यक्तियों एवं घटनाओं के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रान्तियों का निराकरण होता है । शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में आगरा की यात्रा-सम्बन्धी जो पत्र प्रकाश में आये हैं, उनसे समाज और इतिहास में प्रचलित बहुत-सी गप्पें झूठी साबित हुई हैं । यही बात महाराजा छत्रसाल से सम्बन्धित ऐतिहासिक प्रमाणावली तथा सन् सत्तावन के विप्लव कारियों से सम्बन्धित ऐतिहासिक पत्रावली के विषय में कही जा सकती है । स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास का लगभग पूरा विवरण हमें स्वाधीनता-संग्राम के सेनानियों तथा युग-विधायक साहित्यकारों के पत्रों में मिल जाता है । यह विवरण इतिहास-ग्रंथों में प्राप्त विवरण से कहीं अधिक रोचक और प्रमाणिक है । पत्रों में प्राप्त समसामयिक सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । उत्तर मध्यकाल से वर्तमान-युग तक के समाज का यथार्थ चित्र पत्रों में अंकित है । सामाजिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों के अतिरिक्त विभिन्न युग के व्यक्तियों के धार्मिक विश्वासों, मान्यताओं बाह्याचारों, आडंबरों, धार्मिक आन्दोलनों आदि के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ पत्रों में उपलब्ध होते हैं । किन्तु सबसे महत्वपूर्ण एवं मनोरंजक सन्दर्भ साहित्यिक वाद-विवादों और आन्दोलन के हैं । कुछ साहित्यिक विवादों एवं आन्दोलनों को पत्रों के सन्दर्भों के बिना समझा ही नहीं जा सकता । व्रजभाषा और खड़ी बोली-विवाद, दुलारे दोहावली-दंगल आदि आंदोलनों का सूत्रपात साहित्यिकों के पत्र-व्यवहार के द्वारा ही हुआ है । पत्रों में प्राप्त साहित्यिक चोरी के सन्दर्भों से सुदूर अतीत की अनेक घटनाएं प्रत्यक्ष हो उठती हैं । समकालीन पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति तथा सम्पादकों के पारस्परिक रागद्वेष के सन्दर्भों से हिन्दी पत्रकारिता के अनेक अछूते पहलू उजागर होते हैं । पत्रों में प्राप्त साहित्यिक समारम्भों और गोष्ठियों आदि के सन्दर्भों से साहित्य के प्रति लोगों की अभिरुचि प्रकट करते हैं । संक्षेप में ये पत्र समकालीन इतिहास के मूल्यवान् दस्तावेज हैं।